UNIVERSAL LIBRARY

OU_180280

UNIVERSAL LIBRARY

OUP—552—7-7-66—10,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H84 C56 — Accession No. P. G. H.

Author

Title चुने हुए मजमून 1948.

This book should be returned on or before the date last marked below.

# चुने हुए मज़मून

प्रकाशक

दक्षिण भारत हिन्दुस्तानी प्रचार सभा

मद्रास

0 - 1

सर्वाधिकार स्वरक्षित] [दाम [illegible]

सर्वोदय साहित्य मन्दिर

हिन्दी प्रचार पुस्तक-माला, पुष्प—३८.

१, २ ... १९४४—४
३ ... १९४८—५

मुद्रक
कबीर प्रिंटिङ वोर्कस, तिरुवल्लिक्केणी,
मद्रास.

# दीबाचा

"चुने हुए मज़मून" नाम से ही यह ज़ाहिर हो जाता है कि इसमें क्या है? हम बहुत दिनों से चाहते थे कि 'राष्ट्र-भाषा-विशारद' के विद्यार्थियों के लिये एक ऐसी किताब तैयार करें जिसमें उर्दू ज़बान के नामी-गरामी लेखकों की कुछ रचनाएँ इकट्ठी की जायँ, जो आमफ़हम उर्दू ज़बान में लिखी गयी हों। बस, इसी ख़्याल से यह किताब तैयार की गयी है। इसमें जितने मज़मून हैं, वे ज्यों के त्यों उर्दू से लेकर देवनागरी हरूफ़ में लिख दिये गये हैं। हाँ, जहाँ कहीं अरबी फ़ारसी के बहुत मुश्किल अल्फ़ाज़ हमारे सामने आये हमने उनको आसान कर दिया है। हमें पूरा यकीन है कि इस किताब से उर्दू के आमफ़हम अल्फ़ाजों को सीखने में विद्यार्थियों को काफ़ी मदद मिलेगी। हम उन सभी लेखकों के कृतज्ञ हैं, जिनके मज़मूनों को हमने अपने इच्छानुसार संकलित किया है और जहाँ-तहाँ काट-छाँट भी की है। उम्मीद है कि हमारे लेखक-गण इसके लिये हमें क्षमा करेंगे।

—प्रकाशक

# मज़मूनों की सूची


| | | | |
|---|---|---|---|
| १. | उम्मीद की ख़ुशी—सर सैयद अहमद ख़ाँ | ... | १ |
| २. | हिन्दुस्तान के दो बादशाह—'तारीख़े हिन्द' | ... | ८ |
| ३. | तक़रीर का जादू—शेक्सपियर | ... | १३ |
| ४. | शेरशाह सूरी—'तवारीख़े हिन्द' | ... | २६ |
| ५. | जापानी बच्चों की तालीम | ... | ३५ |
| ६. | सवाल-जवाब—मिर्ज़ा फ़हीमबेग चग़ताई | ... | ४४ |
| ७. | विक्रमादित्य का तेग़ा—प्रेमचन्द | ... | ७४ |
| ८. | हिन्दू-मुसलिम-इत्तिहाद—एक तक़रीर से | ... | १०७ |
| | मुश्किल लफ़्ज़ों के माने | ... | १११ |

# चुने हुए मज़मून

## उम्मीद की ख़ुशी

ऐ आसमान पर भूरे बादलों में चमकनेवाली बिजली की धनक, ऐ आसमान के तारो, तुम्हारी ख़ुशनुमा चमक, ऐ बुलन्द पहाड़ों की आसमान से बातें करनेवाली धुँधली चोटियो, ऐ पहाड़ के आलीशान दरख़्तो, ऐ ऊँचे टीलों के दिलकश बेल-बूटो, तुम बनिस्बत हमारे पास के दरख़्तों और सरसब्ज़ खेतों, और लहराती हुई नहरों के क्यों ज़्यादा ख़ुशनुमा मालूम होते हो? इसलिए कि हम से बहुत दूर हो। इस दूरी ही ने तुमको यह ख़ूबसूरती बख़्शी है। इस दूरी ही से तुम्हारा नीला रंग हमारी आँखों को भाया है। तो हमारी ज़िन्दगी में भी जो चीज़ बहुत दूर है, वही हमको ज़्यादा ख़ुश करनेवाली है!

वह चीज़ क्या है? क्या अक़्ल है, जिसको सबसे आला समझते हैं? क्या वह हमको आइन्दा की ख़ुशी का यक़ीन दिला

सकती है? हरगिज़ नहीं। उसका मैदान तो निहायत तंग है। बड़ी दौड़धूप करे तो नेचर तक उसकी रसाई है जो सबके सामने है।

ओ नूरानी चेहरेवाली यक़ीन की एकलौती ख़ूबसूरत बेटी उम्मीद! यह ख़ुदाई रोशनी तेरे ही साथ है। तू ही हमारी मुसीबत के वक़्तों में हमको तसल्ली देती है। तू ही हमारे आड़े वक़्तों में हमारी मदद करती है। तेरी ही बदौलत निहायत दूरदराज़ खुशियाँ हमको निहायत ही पास नज़र आती हैं। तेरे ही सहारे से ज़िन्दगी की मुश्किल २ घाटियाँ हम तय करते हैं। तेरे ही सबब से हमारे सोते हुए ख़्याल जागते हैं। तेरी ही बरकत से ख़ुशी, ख़ुशी के लिये नामवरी, नामवरी के लिये बहादुरी, बहादुरी के लिये फ़य्याज़ी, फ़य्याज़ी के लिये मुहब्बत, मुहब्बत के लिये नेकी, नेकी के लिये हिम्मत तैयार है। इंसान की तमाम ख़ूबियाँ और सारी नेकियाँ तेरी ही ताबे और तेरी ही फ़र्मांबर्दार हैं।

वह पहला गुनहगार इंसान जब शैतान के चंगुल में फँसा और तमाम नेकियों ने उसको छोड़ा और तमाम बदियों ने उसको घेरा, तो सिर्फ़ तू ही उसके साथ रही। तूने ही उस नाउम्मीद को नाउम्मीद होने नहीं दिया। तूने ही उस मौत में फँसे दिल को मरने नहीं दिया। तूने ही उसको उस ज़िल्लत से निकाला और फिर उसको उसी आले दर्जे पर पहुँचाया जहाँ कि फ़रिश्तों ने उसको सिजदा किया था।

ऐ आसमानों की रोशनी और ऐ नाउम्मीद दिलों की तसल्ली, उम्मीद! तेरे ही शादाब और सरसब्ज़ बाग़ से हरएक मिहनत का

फल मिलता है। तेरे ही पास हर दर्द की दवा है। तुझी से हरएक रंज में आसूदगी है। अक़्ल के वीरान जंगलों में भटकते-भटकते थका हुआ मुसाफ़िर तेरे ही घने बाग़ के सरसब्ज़ दरख़्तों के साये को ढूँढ़ता है। वहाँ की ठंडी हवा ख़ुश-अलहान जानवरों के राग और बहती नहरों की लहरें उसके दिल को राहत देती हैं। उसके मरे हुए ख़्यालात को फिर ज़िन्दा करती हैं। तमाम फ़िक्रें दिल से दूर होती हैं और दूर-दराज़ ज़माने की ख़्याली ख़ुशियाँ सब आ मौजूद होती हैं।

देख, नादान बेबस बच्चा झूले में सोता है। उसकी दुखिया माँ अपने धन्धे में लगी हुई है और उस झूले की डोरी भी हिलाती जाती है। हाथ काम में, और दिल बच्चे में है, और ज़बान से उसको यों लोरी देती है—

सो रह मेरे बच्चे सो रह!
ऐ अपने बाप की मूरत,
और मेरे दिल की ठंडक, सो रह।
ऐ मेरे दिल की कोंपल सो रह,
बढ़ और फल-फूल,
तुझ पर कभी ख़िज़ाँ न आने पावे।

तेरी टहनी में कोई काँटा कभी न फूटे। कोई कठिन घड़ी तुझको न आवे। कोई मुसीबत, जो तेरे माँ बाप ने भुगती, तू न देखे। सो रह मेरे बच्चे सो रह। मेरी आँखों के नूर और मेरे दिल के सरूर—मेरे बच्चे, सो रह। तेरा मुखड़ा चाँद से भी ज़्यादह रोशन

होगा। तेरी आदत तेरे बाप से भी अच्छी होगी। तेरी शोहरत, तेरी लियाक़त, तेरी मुहब्बत—जो तू हमसे करेगा, आख़िरकार हमारे दिल को तसल्ली देंगी, तेरी आवाज़ हमारे लिये ख़ुश करने-वाली रागिनियाँ होंगी। तेरी हँसी हमारे अँधेरे घर का उजाला होगी। तेरी प्यारी-प्यारी बातें हमारे ग़म को दूर करेंगी। सो रह मेरे बच्चे, सो रह। हमारी उम्मीदों के पौदे! सो रह। सो रह मेरे बच्चे, सो रह। सो रह, मेरे बाले सो रह।

ये उम्मीद की खुशियां मां को उस वक्त थीं, जब कि बच्चा गूँ-गां भी नहीं कर सकता था; मगर जब वह ज़रा और बड़ा हुआ और बचपन की हँसी से अपनी मां के दिल को ख़ुश करने लगा और 'अम्माँ'-'अम्माँ' कहना सीखा, उसकी प्यारी आवाज़—अधूरे लफ़्ज़, उसकी माँ के कान मे पहुँचने लगे, आँसुओं से अपनी मां के प्रेम की आग को भड़काने के क़ाबिल हुआ। फिर मकतब से उसको सरोकार पड़ा। रात को अपनी माँ के सामने दिन का पढ़ा हुआ सबक़ ग़मज़दा दिल से सुनाने लगा। और जब कि वह तारों के साये मे उठकर हाथ-मुँह धोकर अपने माँ-बाप के साथ सुबह की नमाज़ में खड़ा होने लगा, और अपने बेगुनाह दिल, बेगुनाह ज़बान से, पाक ख़्याल से ख़ुदा का नाम पुकारने लगा तो उम्मीद की खुशियाँ और किस क़दर ज़्यादह हो गयीं। उसके माँ-बाप उस मासूम सीने से सच्ची हमदर्दी देखकर कितने ख़ुश होते हैं। और हमारी प्यारी उम्मीद, तू ही है जो जन्म से आख़िर तक हमारे साथ रहती है।

देखो, वह बूढ़ा आँखों से अंधा अपने घर मे बैठा रोता है। उसका प्यारा बेटा भेड़ों के रेवड़ में ग़ायब हो गया है, वह उसको ढूँढ़ता है; पर वह नहीं मिलता। मायूस है, पर उम्मीद नहीं टूटी। लहू भरा, दाँतों फटा कुरता देखता है; पर मिलने से नाउम्मीद नहीं। फ़ाकों से ख़ुश्क है, ग़म से ज़ार-ज़ार है, रोते-रोते आँखें सफ़ेद हो गयी हैं, कोई ख़ुशी उसके साथ नहीं है; लेकिन—मगर सिर्फ़ एक उम्मीद है जिसने उसको मुलाक़ात की उम्मीद में ज़िन्दा और उस ख़्याल मे ख़ुश रखा है।

देख, वह बेगुनाह क़ैदी अँधेरे कुँए में सात तहख़ानों में बंद है। उसका सूरज का-सा चमकनेवाला चेहरा ज़र्द है। बे-यार, बे-भरोसा, ग़ैर-क़ौम, ग़ैर-मज़हब के लोगों के हाथ मे क़ैद है। बूढ़े बाप का ग़म उसकी जान को सदमा पहुँचाता है। अज़ीज़ भाई की जुदाई उसके दिल को ग़मगीन रखती है। क़ैदख़ाने की मुसीबत, उसकी तनहाई, उस घर का अँधेरा और उस पर अपनी बेगुनाही का ख़्याल उसको निहायत ही रंजीदा रखता है। उस वक़्त कोई उसका साथी नहीं है; मगर ऐ हमेशा ज़िन्दा रहनेवाली उम्मीद! तुझी मे उसकी ख़ुशी है!

वह दिलावर सिपाही लड़ाई के मैदान में खड़ा है। कूच-पर-कूच करते-करते थक गया है। हज़ारों ख़तरे दरपेश हैं; मगर सब में ताक़त तुझी से है। लड़ाई के मैदान में जब कि बहादुरों की सफ़ें चुपचाप खड़ी होती हैं और लड़ाई का मैदान एक सुनसान का आलम होता है, दिलों में अजब क़िस्म की ख़ौफ़ मिली हुई

जुर्रत होती है और जब कि लड़ाई का वक़्त आता है और लड़ाई के बिगुल की आवाज़ बहादुर सिपाही के कान में पहुँचती है और वह आंख उठाकर निहायत बहादुरी से बिलकुल बेख़ौफ़ होकर लड़ाई के मैदान को देखता है और जब कि बिजली-सी चमकनेवाली तलवारें और संगीनें उसकी नज़र के सामने होती हैं और बादल की-सी कड़कनेवाली और आतिशीं पहाड़ की सी आग बरसानेवाली तोपों की आवाज़ सुनता है और जब कि वह अपने साथी को ख़ून मे लथड़ा हुआ, ज़मीन पर पड़ा हुआ देखता है, तो ऐ बहादुरी की कूवते-बाज़ू और ऐ बहादुरों की मां ! तेरे ही सबब फ़तहमंदी का ख़्याल उनके दिलों को कूवत देता है। उनका कान नक्कारे में से तेरे ही नग़मे की आवाज़ सुनता है।

वह क़ौमी भलाई का प्यासा अपनी क़ौम की भलाई की फ़िक्र करता है। दिन-रात अपने दिल को जलाता है। हर वक़्त भलाई की तदबीरें ढूँढ़ता है। उनकी तलाश में दूर-दराज़ का सफ़र अख़्तियार करता है। यगानों-बेगानों से मिलता है। हर एक की बोलचाल मे अपना मतलब ढूँढ़ता है। मुश्किल के वक्त एक-एक से मदद मांगता है। जिनकी भलाई चाहता है, उन्ही को दुश्मन पाता है। शहरी वहशी बतलाते हैं, दोस्त-आशना दीवाना कहते हैं। भाई-बंद अज़ीज़ व अक़ारब समझाते हैं और फिर यह शेर पढ़कर चुप रहते हैं—

वह भला किसकी बात माने हैं,
भाई साहब तो कुछ दीवाने हैं।

साथी साथ देते हैं ; मगर हां-हां कर-कर। मिहनत और जलन से दूर रहकर। बहुत-सी हमदर्दी करते हैं ; पर अपने से अलग होकर। दिल हर वक़्त बेकरार है। किसी को अपना-सा नहीं पाता। किसी पर दिल नहीं ठहरता ; मगर ऐ बेकरार दिलों की ख़ुशी और ऐ टूटे हुए इज़्ज़तों की ताक़त! तू ही हरदम हमारे साथ है। तू ही हमारे दिल की तसल्ली है। तू ही हमारी कठिन मंज़िलों की साथी है। तेरी ही ताक़त से हम अपने मंज़िले-मकसूद तक पहुँचेंगे। तेरे ही सबब गौहरे-मुराद पायेंगे। ओ हमारे दिल की अज़ीज़ और हमारी प्यारी उम्मीद, तू हमेशा हमारे दिल की तसल्ली रह।

— सर सैयद अहमद ख़ां.

---

# हिन्दुस्तान के दो बादशाह

## (१)

## चंद्रगुप्त

सिकंदर के मरने के बाद जब उत्तरी पंजाब का यूनानी समीर वापस चला गया और यूनानी जगह-जगह क़तल कर दिये गये, या आसपास की बस्तियों में जाकर घुल-मिल गये; उस वक़्त चन्द्रगुप्त नामी एक नौजवान ने जो माँ की तरफ़ से नंद-ख़ानदान का रिश्तेदार था, चन्द क़बीलों को जमा किया और उनकी मदद से मुल्क मगध पर क़ब्ज़ा कर लिया। इसकी तख़्तनशीनी ३२२ या ३२५ ई० सन् पूर्व हुई। इसकी सल्तनत और ख़ानदान को मौर्य कहते हैं और इसकी वजह यह है कि चन्द्रगुप्त की मां का नाम शायद मुरा था। बहरहाल यही वह शख़्स है जिसको सही माने में हिन्दुस्तान का पहला तारीख़ी बादशाह कहते हैं। इसी ने आसपास की रियासतों को फ़तह करके एक बड़ी सल्तनत क़ायम की, जिसमें तमाम उत्तरी हिन्दुस्तान का इलाका दाख़िल था।

इसी ज़माने में सिल्यूकस एक यूनानी सरदार था, जो सिकंदर के बाद ईरान-सीस्तान का बादशाह बन गया था। ३०५ ई० सन् पूर्व में उसने हिन्दुस्तान पर हमला किया ताकि सिकंदर ने जो

सूबे फ़तह किये थे, इन पर दुबारा क़ब्ज़ा कर ले; लेकिन चन्द्रगुप्त की फ़ौज के आगे यूनानी की कुछ पेश न गयी और सिल्यूकस को दबकर सुलह करनी पड़ी। और कहते हैं अपने ख़ानदान की एक लड़की भी उसने चन्द्रगुप्त को ब्याह दी। इस दोस्ती का नतीजा यह हुआ कि यूनानियों का पूर्वी हिन्दुस्तान में आना-जाना होने लगा और सिल्यूकस की जानिब से मगध के पाये-तख़्त में दूत एक भेजा गया जिसका नाम मेगस्थनीज़ था। इसने हिन्दुस्तान के बयाने-हालात में एक किताब लिखी थी, जिससे चन्द्रगुप्त के ज़माने में लोगों के रहन-सहन के तरीक़े और मुल्की इन्तज़ाम के बारे में बहुत-सी बातें मालूम होती हैं

इन दिनों मगध की राजधानी पाटलीपुत्र उस जगह थी, जहाँ आजकल पटना आबाद है। मेगस्थनीज़ ने लिखा है कि शहर ९ मील लंबा और २ मील के क़रीब चौड़ा था। इसकी चहार-दीवारी कच्ची थी जिसमें चौबीस दरवाज़े और बहुत-से बुर्ज थे। और चारों तरफ़ से एक ख़ंदक उसको घेरे हुए थी। शहर में कई इन्तज़ामी मजलिसें थीं जो अजनास की क़ीमत और करोड़गिरी के महसूल मुक़र्रर करती और मुसाफ़िरों, सौदागरों, और सय्याहों के आराम का ख़याल रखती थीं। शहर से बाहर फ़ौज की छावनी थी और वहाँ जंगी रथों, हाथियों, प्यादों और सवारों की बहुत बड़ी तादाद रहती थी।

तमाम ज़मीन राजा की मिल्कियत समझी जाती थी और किसान पैदावार का चौथाई हिस्सा ख़ज़ाना शाही में दाख़िल करते

थे; लेकिन किसान बहुत अच्छी हालत में थे और लड़ाई के ज़माने में भी वे खेती करते रहते थे।

दिन में एक दफ़ा दरबार-आम होना ज़रूरी था, जिसमें राजा फ़रियादियों की फ़रियाद सुनता था। सूबों की हुकूमत सूबेदारों के सुपुर्द थी और उनकी निगरानी जासूसों के ज़रिये की जाती थी; मगर यह काम करना शरीफ़ लोग पसंद न करते थे। हिन्दुस्तानी आमतौर पर शरीफ़ और दियानतदार थे। मुल्क में कुसूर बहुत कम होते थे, और ज़रा-ज़रा से कुसूरों पर सख़्त सज़ायें दी जाती थीं।

चन्द्रगुप्त के बाद उसका बेटा बिंदुसार गद्दी पर बैठा। इसके वक़्त की कोई पूरी तारीख़ नहीं मिलती जिसकी वजह यह है कि हिन्दुओं को कभी तारीख़ लिखने का ख़्याल नहीं आया। चन्द्रगुप्त के हालात का भी सिर्फ़ मेगस्थनीज़ और मज़हबी किताबों से पता लगता है; लेकिन बिंदुसार के बेटे अशोक के हालात उन फ़रमानों से मालूम हुए हैं जो इसने पत्थर की लाटों पर जगह-जगह खुदवाये थे। इन लिखावटों का दूर-दूर पाया जाना ज़ाहिर करता है कि अशोक हिन्दुस्तान का सबसे ताक़तवर बादशाह गुज़रा है। इसकी लाटें पेशावर-कश्मीर से लेकर दक्खिन में मैसूर के इलाक़े तक बरामद हुई हैं; लेकिन इससे यह नतीजा निकालना कि यह सब मुल्क उसकी अमलदारी में दाख़िल थे, दुरुस्त नहीं। बल्कि मुमकिन है कि बौद्ध मज़हब के साधु और उपदेशक जो हिदायत और नसीहत के वास्ते दूर-दूर भेजे गये थे, अशोक के फ़रमानों को खुदवा गये हों। अलबत्ता इसमें शक नहीं कि उत्तरी

हिन्द के सबसे मालदार हिस्सों में अशोक का राज्य था जो मुसलमान बादशाहों से पहले किसी को नसीब नहीं हुआ।

(२)

## अशोक

अशोक सन् २७२ ई० सन् पूर्व में अपने बाप के तख़्त पर बैठा; मगर तख़्त व ताज के वास्ते इसे अपने भाइयों से लड़ना पड़ा और ई० सन् पूर्व में इसकी तख़्तनशीनी की रस्म अदा हुई। इसके आठ साल बाद उसने "कलिंग" यानि ख़लीज बंगाल के किनारे का मुल्क फ़तह कर लिया। इस जंग के नतीजे इस क़दर नसीहत देनेवाले हैं कि अशोक ने आइंदा ऐसे ख़ून-ख़राबी के कामों से तोबा कर ली। इसकी तबीअत रोज़-ब-रोज़ बौद्ध मज़हब की तरफ़ मायल होती जाती थी और आख़िरी उम्र में वह बिलकुल इसी मज़हब का एक फ़कीर हो गया था। इसकी लड़की चारुमती भी भिक्षुणी होकर किसी ख़ानक़ाह में एकान्त में रहती थी।

अशोक का इरादा बहुत आला था, वह इंसानों के बजाय बुराइयों पर क़ब्ज़ा करना चाहता था। उसकी लाटों से मालूम होता है कि वह लोगों को उनके फ़रायज़ से आगाह करना और नेकदिली सिखाना चाहता है। इसके विश्वास के मुताबिक़ आदमी के तीन फ़र्ज़ हैं—बुज़ुर्गों यानि वालिदैन और मुर्शिद का अदब

पहला फ़र्ज़ है, दूसरा बेआज़ारी है कि किसी जानवर को दुख न दिया जाय और तीसरा फ़र्ज़ सचाई को क़रार दिया है।

कहते हैं कि लोगों को अच्छे अख़लाक सिखाने और नेकी कराने के वास्ते 'अशोक' ने एक ख़ास महकमा भी क़ायम किया था; मगर इसके तमाम हुकूमत में हाकिमों को रिआया के साथ नरमी, मुहब्बत करने की ताकीद नज़र आती है। फ़रियादी के वास्ते इसका दरवाज़ा खुला रहता था। लोगों के आराम पर कभी अपनी ज़ाती आरामियत को ज़्यादह दूसरों के मानिंद न किया और पहाड़ों की चट्टानों पर हुक्मनामा खुदवाने का भी मतलब यही था कि इसकी अज़ीज़ रिआया बुराइयों से बचे और नेक अमल करती रहे।

बौद्ध मज़हब के प्रचार के वास्ते अशोक ने दूर-दूर, मसलन् साम व मिस्र तक प्रचारक रवाना किये। इसका भाई या बेटा लंका में प्रचार के वास्ते गये; लेकिन ख़ुद उत्तरी हिन्द में रहा। बौद्धमत के रास्ते में बहुत मुशकिलें थीं। बादशाह की कोशिश से कुछ दिनों तक इस मज़हब का ज़ोर हो गया था; लेकिन आम लोगों के दिल पर ब्राह्मणों का बहुत असर था, वह अपनी मूर्ति की पूजा छोड़ना नहीं चाहते थे, इसलिए इस तालीम का असर थोड़े ही दिनों बाद कम होकर मिट गया। —'तारीख़े - हिन्द'

---

# तक़रीर का जादू

"मुझे जो कुछ कहना है, उसे मेरे मक़सद की ख़ातिर सुनो और ख़ामोश रहो कि मेरी तक़रीर तुम्हें सुनायी दे। मेरी शराफ़त का ख़्याल करके मेरे क़ौल पर यक़ीन करो। और उसका इहतराम करो ताकि तुम्हें यक़ीन आये। अपनी दानिशमन्दी से मेरे फ़ल पर हुक्म लगाओ और बेदार मग़ज़ी से काम लो, ताकि तुम सही फ़ैसला कर सको। अगर इस मजमा में कैसर का कोई अज़ीज़ दोस्त मौजूद है, तो मैं उससे कहता हूँ कि ऐ मेर दोस्त, तुमको कैसर से जिस क़दर मुहब्बत थी, ब्रूटस को उससे कम न थी। फिर अगर वह दोस्त मुझसे पूछे कि तुमने कैसर पर तलवार क्यों उठायी, तो मेरा जवाब यह है। इस वजह से नहीं कि मैं कैसर को कम चाहता था; बल्कि इस वजह से कि मैं रोम को ज़्यादा चाहता था। (आवाज़ में ज़ोर पैदा हो जाता है) क्या तुम्हारे नज़दीक यह अच्छा था कि कैसर ज़िन्दा रहता और तुम सब गुलामों की मौत मरते या यह अच्छा है कि कैसर मर गया है और तुम सब आज़ाद हो? कैसर मुझसे मुहब्बत करता था, इसलिये मैं उसका मातम करता हूँ। वह ख़ुश क़िस्मत था। उसे याद करके मैं ख़ुश होता हूँ। वह बहादुर था, इसलिये मैं उसकी इज़्ज़त करता हूँ; लेकिन चूँकि वह जाहतलब था, इसलिये मैंने उसे क़तल कर दिया। उसकी मुहब्बत के लिये आंसू हैं। उसकी ख़ुशनसीबी पर ख़ुशी है।

उसकी बहादुरी का सिला इज़्ज़त है, और उसकी जाहतलबी की सज़ा मौत! (आवाज़ भर्रा जाती है) क्या यहाँ है कोई ऐसा ज़लील आदमी, जो ग़ुलाम होना पसन्द करे? अगर हो तो कह दे, क्योंकि मैं उसका मुजरिम हूँ। क्या यहाँ है कोई ऐसा कमीना, जिसे अपने मुल्क से मुहब्बत नहीं? अगर हो तो कह दे, क्योंकि मैं उसका मुजरिम हूँ। क्या यहां है कोई ऐसा बदनफ़स, जिसे रूमी होना गवारा नहीं? अगर हो तो कह दे, क्योंकि मैं उसका मुजरिम हूँ।"

सब एक-ज़बान होकर- कोई नहीं है ब्रूटस! कोई नहीं है!

ब्रूटस—फिर मैं किसी का मुजरिम नहीं। जो मैंने कैसर के साथ किया है, वही तुम चाहो तो ब्रूटस के साथ कर सकते हो। कैसर की मौत के हालात सरकारी दफ़्तर में महफ़ूज़ हैं जिनमें न उसकी अज़मत पर, जो उसकी खूबी है, पर्दा डालने की कोशिश की गयी है न उसके कुसूरों को, जो उसकी मौत का बाइस हुये, मुबालग़ा के साथ बयान किया गया है। (इतने में कैसर के दोस्त एंटोनी वगैरह, जो उसका इन्तक़ाम लेना चाहते हैं, कैसर की लाश लेकर आ जाते हैं। ब्रूटस उन्हें देखकर फिर मजमा की तरफ़ मुख़ातिब होता है।) वह देखो, एंटोनी उसकी लाश पर मातम करता हुआ आ रहा है। मगर एंटोनी का कैसर के क़तल में कोई दख़ल न था; लेकिन उसे भी उससे फ़ायदा पहुँचेगा यानी हुकूमत में ओहदा मिलेगा। इसी पर क्या मौकूफ़ है? तुममें से ऐसा कौन है? जिसे फ़ायदा नहीं पहुँचेगा? मैं इतना कहकर रुख़सत होता हूँ कि जिस तरह मैंने अपने अज़ीज़तरीन

दोस्त को इस खंजर से क़तल कर दिया, इसी तरह यह ख़ंजर मेरे खून बहाने के लिये मौजूद होगा; अगर मेरी मौत से मेरे मुल्क को फ़ायदा पहुँचे।

सब एक-ज़बान होकर—ज़िन्दाबाद ब्रूटस! ज़िन्दाबाद ब्रूटस!

एक रूमी—एक जलूस बनाकर इसे इसके घर ले चलो।

दूसरा रूमी—इसके बाप-दादा की तरह इसको भी जिस्मानी इज़्ज़त दें।

तीसरा रूमी—इसी को कैसर क्यों न बना दें?

चौथा रूमी—हाँ, कैसर की तमाम खूबियां इसकी ज़ात में जमा है।

ब्रूटस—मेरे हमवतनो!

एक शख़्स—ख़ामोश! ब्रूटस ख़ुद कहना चाहता है।

दूसरा—ख़ामोश! ख़ामोश!

ब्रूटस—मेरे प्यारे हमवतनो! मुझे अकेला जाने दो, और मेरी ख़ातिर यहां एंटोनी के पास ठहरो अदब करो कैसर के जनाज़े का और अदब से सुनो एंटोनी की तक़रीर। कैसर की शान में जो वह हमारी इजाज़त से करता है—मैं तुमसे दरख़्वास्त करता हूँ कि जब तक एंटोनी अपनी तक़रीर ख़त्म न करें, यहां से मेरे अलावा कोई शख़्स न हिले।

एक रूमी—लोगो! ठहरो! ठहरो! मार्क एंटोनी की तक़रीर सुनो।

दूसरा रूमी—इसे मेम्बर पर जाने दो। हम इसकी तक़रीर सुनेंगे। शरीफ़ एंटोनी! ऊपर चढ़ जाओ।

एंटोनी—मैं ब्रूटस की वजह से तुम्हारा बड़ा एहसानमन्द हूँ। (यह कहकर मेम्बर पर चढ़ जाता है)

तीसरा रूमी— क्या कहा उसने ब्रूटस के मुतअल्लिक़?

चौथा रूमी—कहता है कि ब्रूटस की वजह से हम सब का एहसानमन्द है!

तीसरा रूमी—इसका भला इसी में है कि वह ब्रूटस को यहाँ बुरा न कहे!

पहला रूमी—यार, यह कैसर तो बड़ा ज़ालिम था।

तीसरा रूमी—इसमें क्या शक है? खुदा का शुक्र है कि इससे निजात मिली।

दूसरा रूमी—ख़ामोश! ज़रा सुनो तो कि एंटोनी कहता क्या है?

एंटोनी—शरीफ़ रूमियो!

बहुत-सी आवाज़ें—ख़ामोश हो जाओ। सुनने दो।

एंटोनी—दोस्तो! रूमियो! हमवतनो! मेरी बात कान लगाकर सुनो। मैं कैसर को दफ़न करने आया हूँ, इसके गुण गाने नहीं आया। लोग जो बुराई करते हैं, वह उनके मरने के बाद भी ज़िन्दा रहती है; लेकिन उनकी नेकियाँ उनकी हड्डियों के साथ दफ़न कर दी जाती हैं। यही कैसर का हश्र होगा। शरीफ़ ब्रूटस ने तुम्हें बतलाया है कि कैसर शोहरत-पसन्द था,

जाहतलब था; अगर यह बात सच है, तो यह बहुत सख़्त जुर्म था और उसकी सज़ा भी कैसर को बहुत सख़्त भुगतनी पड़ी है। मैं यहां ब्रूटस और उसके साथियों की इजाज़त से, क्योंकि ब्रूटस भी शरीफ़ आदमी है, और उसके साथी भी शरीफ़ लोग हैं, कैसर के जनाज़े पर तक़रीर करने आया हूँ। वह मेरा दोस्त था। मुंसिफ़-मिज़ाज और वफ़ादार; लेकिन ब्रूटस कहता है कि वह जाहतलब था, और ब्रूटस शरीफ़ आदमी है। वह रूम में न जाने कितने क़ैदी लड़ाइयों से साथ लाया है, जिनके फ़िदिये से रोम का ख़ज़ाना भर जाता था। यही इसकी जाहतलबी थी? जब ग़रीब फ़रियाद करते थे, तो कैसर रोता था! जाहतलबों का तो दिल सख़्त होता है; लेकिन ब्रूटस कहता है कि यह जाहतलब था और ब्रूटस शरीफ़ आदमी है। तुमने देखा था, कि लूपरकाल में मैंने तीन बार ताज-शाही इसकी ख़िदमत में पेश किया; लेकिन उसने तीनों बार इनकार कर दिया। क्या इसी का नाम जाहतलबी है? मगर ब्रूटस कहता है कि वह जाहतलब था और ब्रूटस यक़ीनन् शरीफ़ आदमी है। मुझे ब्रूटस की तरदीद मक़सूद नहीं। मैं तो जो कुछ जानता हूँ, वह कहे देता हूँ। तुम सब एक ज़माने में उससे मुहब्बत करते थे। आख़िर बेवजह तो नहीं? फिर अब क्या वजह है कि तुम उसका मातम नहीं करते? (आवाज़ में जोश और गुस्सा पैदा हो जाता है) ऐ अक़्ल व तमीज़! तूने जाकर दरिन्दों में पनाह ली है। (फिर धीमी आवाज़ में) मुझे माफ़ फरना। मेरा दिल इस ताबूत में कैसर के पास है। मुझे

तब तक ठहरना है, जब, तक वह मेरे पास वापस न आ जाये।

एक रूमी—बात तो ठीक कहता है !

दूसरा—हाँ, अगर ग़ौर करो तो, क़ैसर पर बड़ा जुल्म हुआ !

तीसरा—इसमें क्या शक है ? मुझे तो अन्देशा है कि उसकी जगह कोई उससे भी बदतर आदमी हाकिम बन जायगा !

चौथा—तुमने सुना नहीं कि उसने ताज पहनने से इनकार कर दिया था। फिर तो वह यक़ीनन् जाहतलब नहीं था।

पहला—अगर यह सच है, तो बाज़ लोगों को उसकी अच्छी तरह सज़ा भुगतनी पड़ेगी।

दूसरा—देखो तो एंटोनी ग़रीब की आँखें रोते-रोते सुर्ख़ अंगारा हो गयी हैं।

तीसरा—एंटोनी, इससे बेहतर तो सारे रूम में कोई आदमी नहीं है।

चौथा—अच्छा, अब ग़ौर से सुनो। वह फिर तक़रीर शुरू कर रहा है।

एंटोनी—अभी कल की बात है कि कैसर एक इशारे में दुनियां को पलट देता था और अब देखो, यहां पड़ा है और कोई अदना-सा आदमी भी उसका मातम करनेवाला नहीं। साहबो ! अगर मैं आपके दिल व दिमाग़ में ग़म व गुस्से के जज़्बात पैदा करूँ, अगर मैं आपको बग़ावत पर आमादा करना चाहूँ, तो यह ब्रूटस के साथ ज़्यादती होगी। गेसिस के साथ ज़्यादती होगी और ये दोनों आप जानते हैं, बड़े शरीफ़ आदमी हैं। मैं इनके साथ

नाइंसाफ़ी नहीं करूँगा। मुझे यह गवारा है कि मुर्दे के साथ नाइंसाफी करूँ; अपने साथ और आपके साथ नाइंसाफ़ी करूँ; लेकिन मुझे इन शरीफ़ आदमियों के साथ नाइंसाफ़ी गवारा नहीं। देखिये, यह एक ख़रीता है, जिस पर कैसर की मुहर साबित है। यह उसका वसीयतनामा है, जो मुझे उसके कमरे में मिला है। अगर कहीं जम्हूर इस वसीयतनामे को सुन लेते (माफ़ कीजियेगा, मैं उसे सुनाना नहीं चाहता) तो वह दौड़कर कैसर के ज़ख्मों को बोसा देते, अपने रूमालों को उसके मुक़द्दस खून में तर करते, उसकी यादगार के तौर पर और कुछ नहीं तो एक बाल ही माँगकर अपने पास रखते, और मरते वक्त उसका अपने वसीयतनामे में ख़ास तौर पर ज़िक्र करते; और उसे अपने बाल-बच्चों के लिये बतौर एक बेश-क़ीमत विरासत के छोड़ जाते।

हाज़िरीन में से एक—हम वसीयतनामे को सुनेंगे। मार्क एंटोनी, उसे पढ़कर सुनाओ!

सब लोग—वसीयतनामा! वसीयतनामा! हम कैसर का वसीयतनामा ज़रूर सुनेंगे!

एंटोनी—दोस्तो, अज़ीज़ो! ज़रा सब्र करो। वह वसीयतनामा पढ़ने का नहीं, तुम्हें इसका इल्म होना मुनासिब नहीं कि कैसर तुमसे कितनी मुहब्बत करता था। तुम इंसान हो, ईंट-पत्थर नहीं हो। अगर तुम कैसर का वसीयतनामा सुनोगे, तो तुम्हारे तन-बदन में आग लग जायेगी। तुम रंज और गुस्से से दीवाने हो जाओगे। तुम्हें यह न मालूम हो तो अच्छा है कि तुम इसके वारिस होकर...

चूँकि अगर तुम्हें ख़बर हो गयी, तो या खुदा ! कौन जाने इसका क्या नतीजा हो ?

एक शख्स—सुनाओ वसीयतनामा एंटोनी ! हम उसको ज़रूर सुनेंगे। नहीं, सुनाना पड़ेगा !

एंटोनी—अच्छा, तुम सब्र से सुनो भी। ज़रा ठहर जाओ। मैंने जोश में आकर इसका ज़िक्र कर दिया। मुझे नहीं करना चाहिए था। मुझे डर यह है कि कहीं यह उन शरीफ़ आदमियों के साथ ज़्यादती न हो, जिनकी ख़ंजरों ने कैसर के जिस्म को छलनी बना दिया है।

दूसरा—वे सब ग़द्दार हैं, ग़द्दार ! आये हैं बड़े शरीफ़ बन के !

सब—वसीयतनामा ! वसीयतनामा !

तीसरा—सब बदमाश हैं ! सब पाजी ! तुम तो वसीयत-नामा पढ़कर सुनाओ। वसीयतनामा !

एंटोनी—तुम तो वसीयतनामा पढ़वा कर ही मानोगे। अच्छा, चलो। कैसर की लाश के गिर्द एक हल्क़ा बना लो। तुम्हें यह भी तो दिखा दूँ कि वसीयतनामे का लिखनेवाला कौन था ? मैं नीचे उतर आऊँ ? तुम्हारी इजाज़त है ?

सब—हाँ-हाँ ! नीचे आ जाओ।

दूसरा—उतरो-उतरो !

(एंटोनी नीचे उतर आता है)

तीसरा—आओ, तुम्हें इजाजत है।

पहला—ताबूत से हटकर खड़े हो।

चौथा—आओ, कैसर की लाश के चारों तरफ़ घेरकर खड़े हो जाओ।

एंटोनी—मुझ पर पिले क्यों पड़ते हो? ज़रा हटकर खड़े हो।

सब लोग—हटो-हटो! पीछे हटकर खड़े हो। जगह दो। मुअज़्ज़िज़ एंटोनी को जगह दो।

एंटोनी—दोस्तो! अगर तुम्हारी आँखों में आँसू हैं, तो अब उन्हें बहाने के लिये तैयार हो जाओ। तुम सब इस चोग़ा को पहचानते हो? मुझे वह दिन याद है, जब कैसर ने उसे पहली बार पहना था। गर्मी का मौसम था और शाम का वक़्त। कैसर अपने ख़ेमे में बैठा हुआ था। उस रोज़ उसने नर्दाई क़ौम को शिकस्त दी थी। यह देखो, यह वह जगह है, जहाँ गेसिस के ख़ंजर ने इसे चाक किया है। और इस मुक़ाम पर यह देखो, हासिद कास्का ने कितना बड़ा शिगाफ़ कर दिया है! इस जगह ब्रूटस! कैसर के अज़ीज़ और महबूब दोस्त ब्रूटस ने ख़ंजर का वार किया है और जब उसने अपने ख़ंजर को निकाला तो देखो, किस तरह कैसर का खून फ़ौवारे की तरह वह निकला! गोया उसने यह मालूम करना चाहा कि क्या वाक़ई ऐसा भारी ज़ख्म ब्रूटस ही ने लगाया है? क्योंकि यह तो तुम जानते ही हो कि ब्रूटस कैसर को जान से बढ़कर अज़ीज़ था। ऐ देवताओ! तुम्हीं इंसाफ़ करो कि कैसर इसे किस क़दर चाहता था? कैसर के लिये यह ज़ख्म सबसे सख़्त था। क्योंकि जब शरीफ़ दिल कैसर ने ब्रूटस को

ख़ंजर मारते देखा तो नाशुक्री और बेवफ़ाई ने, जो दुश्मनों के हथियारों से कहीं बढ़कर हैं, उसे पास्त कर दिया। तब उसका कवी दिल पाश-पाश हो गया। अबा में अपने चेहरे को ढककर वह पाम्पी के बुत के नीचे जिससे ख़ून टपक रहा था, ज़मीन पर गिर पड़ा। मेरे हमवतनो! वह गिरना भी किस क़यामत का गिरना था। उसके गिरने से गोया मैं, तुम, हम सब-के-सब ख़ाक पर गिर पड़े, और चारों तरफ़ बग़ावत और ख़ून का दौरदौरा हो गया। हाँ, अब तुम रोते हो! और मैं देखता हूँ कि रंज और रहमदिली के जज़्बात तुम पर ग़ालिब आ रहे हैं। तुम्हारे ये आँसू बड़े मुबारक हैं। ऐ नेकदिल लोगो! तुम कैसर के कपड़ों को फटा हुआ देखकर रोया करते हो! देखो, इसके जिस्म को देखो। इन ग़द्दारों की खंजरों ने छलनी कर दिया है।

एक शख़्स—हाय! कैसा दर्दनाक नज़्ज़ारा है!

दूसरा—हाय, शरीफ़ दिल कैसर!

तीसरा—कैसा अन्दूहनाक दिन है आज का!

चौथा—कम्बख़्त! पाजी, ग़द्दार कहीं के।

पाँचवाँ—हम उनसे बदला लेंगे!

सब एक ज़बान होकर—हाँ-हाँ बदला लेंगे। चलो, उनको ढूँढो। मार डालो। जला दो। एक भी क़ातिल को ज़िन्दा न छोड़ो।

एंटोनी—मेरे हमवतनो! ज़रा ठहरो! ज़रा सब्र करो।

पहला—ख़ामोश, सुनो। एंटोनी क्या कहता है?

दूसरा—हाँ, हम इसकी सुनेंगे। इसके कहने पर चलेंगे। इसके साथ अपनी जानें दे देंगे।

एंटोनी—अच्छे दोस्तो! प्यारे दोस्तो! देखो, ऐसी बग़ावत पर आमादा न हो जाओ। जिन लोगों ने यह काम किया, वे सब शरीफ़ आदमी हैं। अफ़सोस, मुझे यह नहीं मालूम कि उन्हें क्या ज़ाती रंजिशें थीं? जिनकी वजह से उन्होंने ऐसा किया। वे अक़्लमंद भी हैं और मुअज़्ज़िज़ भी। और तुम्हें यक़ीनन् अपने इस फ़ेल की वजह बतलाकर यक़ीन करा देंगे। दोस्तो! मैं तुम्हारे दिलों को मोहने नहीं आया हूँ। मैं ब्रूटस की तरह लंबी-चौड़ी बातें करनेवाला नहीं हूँ। तुम जानते हो, मैं अक्खड़, साफ़गा आदमी हूँ। और अपने दोस्त का दोस्त हूँ। यह बात उन लोगों को भी मालूम है, जिन्होंने मुझे क़ैसर के बारे में तक़रीर करने की इजाज़त दी है। क्योंकि मेरी गुफ़्तगू में न वह शेख़ी है, न वे जादू भरे अलफ़ाज़, जो लोगों को गर्मा दे। मैं तो जो जी में आता है, कहता चला जाता हूँ। और तुम्हें वे ही बातें बतलाता हूँ, जो तुम ख़ुद जानते हो। तुम्हें अपने प्यारे कैसर के ज़ख़्म दिखलाता हूँ, जो गोया उसको गूँगी ज़बान हैं। और मैं उनसे कहता हूँ कि वे मेरी तरफ़ से बोलें। (जोश में) हाँ, अगर मैं ब्रूटस होता, और ब्रूटस एंटोनी होता तो वह एंटोनी अलबत्ता तुम्हारे जज़्बात को उभाड़ता; और क़ैसर के हर ज़ख़्म में ज़बान लगा देता कि रूम का एक-एक पत्थर बग़ावत के लिये उठ खड़ा होता।

सब—हम बग़ावत करने को तैयार हैं।

एक शख़्स—हम ब्रूटस के मकान मे आग लगा देंगे!

दूसरा—चलो, फिर देर क्या है! साज़िश करनेवालों को तलाश करो।

एंटोनी—दोस्तो! मेरी बात तो सुनो। जल्दी मत करो।

सब—ख़ामोश! एंटोनी, मुअज्जिज़ एंटोनी की तक़रीर सुनो।

एंटोनी—दोस्तो! दोस्तो, तुम्हें मालूम भी है कि तुम किसलिये जा रहे हो? क़ैसर ने तुम्हारे लिये क्या किया है, जो तुम इससे इस दर्जा मुहब्बत करते हो? अफ़सोस! तुम्हें यह भी मालूम नहीं? आओ, मैं तुम्हें बतलाता हूँ। तुम उस वसीयत-नामे को भूल गये जिसका ज़िक्र मैंने किया था?

सब मिलकर—हाँ, सच तो है! ठहरो! वसीयतनामे को सुनो।

एंटोनी—लो, यह है वह वसीयतनामा, और इस पर क़ैसर की मुहर है। उसने अपनी दौलत मे से हरएक रूमी के लिए ७५ अशर्फ़ियाँ छोड़ी हैं।

एक शख़्स—वाह रे शरीफ़ क़ैसर! हम इसकी मौत का बदला लेंगे।

दूसरा—वाह रे क़ैसर। तू ने क्या शाहाना मिज़ाज पाया था।

एंटोनी—ज़रा सब्र से मेरी बात सुन लो।

सब—ख़ामोश-ख़ामोश!

एंटोनी—यही नहीं बल्कि उसने अपनी तमाम सैरागाहें और अपने तमाम बाग़ जो दरियाए टैबर की उस जानिब हैं, वे तुम्हें और तुम्हारी औलाद को दे दिये हैं, ताकि वे बाग़े-आम के तौर पर तुम्हारी सैर और तफ़रीह के लिये वक़्फ़ हो। कैसर हो तो ऐसा हो!

एक शख़्स—कभी नहीं! कभी नहीं! चलो-चलो! हम उसकी लाश को किसी पाक मुक़ाम पर जलायेंगे; और उसी आग के लूकों से इसके क़ातिलों के घरों को जलाकर उस ख़ाक को तह कर देंगे। आओ, उसका जनाज़ा उठाओ।

दूसरा—चलो, आग लाओ।

तीसरा—बेंचों को तोड़ डालो।

चौथा—बेंचें क्या? तख़्त, खिड़कियाँ जो मिलें, तोड़ डालो।

(सब लाश लेकर चले जाते हैं)

एंटोनी—हाँ, ऐ शैतानियत, तू बेदार हो गयी है। अब तू जो राह चाहे, अख़्तियार कर!

—शेक्सपियर

---

# शेरशाह सूरी

हिन्दुस्तान के बादशाहों में सबसे ज़्यादा शेरशाह इन्तज़ामे मुल्क की लियाक़त रखता था। बावजूद इसके कि उसने बहुत थोड़ी मुद्दत यानी सिर्फ़ पाँच बरस हुकूमत की, और इन अय्याम में भी बराबर लड़ाई में मसरूफ़ रहा; लेकिन इस पर भी जिस क़दर उम्दा और मुफ़ीद आईन व क़वानीन उसने ईजाद किये, जिस कसरत से रिफ़ाहे-आम के काम उसके वक़्त में हुए, उसकी कोई नज़ीर हिन्दुस्तान की तारीख़ में आज तक नहीं मिलती। इस ज़माने में रेल व तार और अमन व आमान ने हर क़िस्म की सहूलियत पैदा कर दी है; लेकिन अगर नज़रे-इंसाफ़ से देखा जाय तो हिन्दुस्तान के किसी वाइसराय ने भी अपने पंचसाला अहदे-हुकूमत में शेरशाह के बराबर क़वानीन ईज़ाद नहीं किये। न किसी एक के अहद में इस क़दर आम लोगों के फ़ायदे के लिये काम हुये।

शेरशाह का असली नाम फ़रीदख़ाँ था। उसका दादा इब्राहिमख़ाँ सुलतान बहलोल लोदी के अहदे-सल्तनत में घोड़ों का सौदागरी करता था। सिकन्दर लोदी के ज़माने में इब्राहिमख़ाँ ने जौनपुर के हाकिम जमालख़ाँ की मुलाज़िमत अख़्तियार की। उसके मरने के बाद उसका बेटा हसनख़ाँ जा-नशीन हुआ, और अपनी लियाक़त व कारवाई से तरक़्क़ी पाकर पाँच सौ सवारों

का अफ़सर हो गया। सहसराम और टाँडा जागीरें पायीं। यहीं शेरशाह पैदा हुआ। २०-२५ साल की उम्र में शेरशाह अपने बाप से एक बात पर रंजीदा होकह जौनपुर चला गया, और जमालखाँ की ख़िदमत में हाज़िर हुआ और तहसील-वसूल के काम सीखने लगा। निहायत शौक़ व ज़ौक से इल्म हासिल की। बाप ने जब बेटे को होनहार देखा तो बुला भेजा; मगर यह न गया। आख़िरकार खुद जौनपुर आकर निहायत इसरार से बेटे को अपने साथ ले गया, और अपनी जागीर का मुख़्तार करके सहसराम को रवाना किया। शेरशाह ने निहायत अच्छी तरह जागीर का इन्तज़ाम किया और बाप के मरने के बाद उसे विरासत में पाया। इसी अर्से में सुलतान बाबर ने इब्राहिम लोदी से हिन्दुस्तान छीन लिया। लोदी ख़ानदान का एक अमीर बिहार का हाकिम था। सुलतान महमूद का ख़िताब अख़्तियार करके खुदमुख्तार हो बैठा। शेरशाह उसकी मुलाज़िमत मे हाज़िर होकर उम्दा ख़िदमतें बजा लाया। एक दिन शिकारगाह में निहायत मर्दानगी दिखायी और तलवार से शेर का शिकार करके शेरखाँ का ख़िताब पाया।

कुछ अर्से बाद शेरखाँ सुलतान महमूद से किसी बात से बदगुमान होकर उसके पास से चल दिया और एक बाबरी अमीर 'जुनीद बरलास' की ख़िदमत में हाज़िर होकर उसके साथ ख़ास दोस्ती हासिल की। उसी के ज़रीये बाबर के दरबार में इज़्ज़त हासिल की। यहाँ मुग़लों का रंग-ढंग देखकर उसके बड़प्पन ने जोश मारा और दिल मे दुनियाँ की सैर के ख़यालत पैदा होने

शुरू हुये। वह अक्सर अपने यारों से कहा करता कि तमाम मुग़ल ऐश व इशरत में डूबे हुये हैं और आज का काम कल पर मौक़ूफ़ रखते हैं। अगर मेरी क़ौम साथ दे तो मैं मुग़लों को हिन्दुस्तान से इस तरह निकाल दूँ जिस तरह दूध से मक्खी को निकाल फेंकते हैं। उसके दोस्त इन बातों पर हँसते थे। एक दिन शेरखाँ जुनीद बरलास के साथ शाही दावत में शरीक हुआ। बाबर बला का क़याफ़ा-शनास था। उसके तेवर देखते ही पहचान गया कि आफ़त का परकाला है। फ़ौरन् क़ैद का हुक्म दिया। जुनीद ने अरज़ की कि अगर जहाँपनाह इसे क़ैद फरमायेंगे तो दरबार में पठानों की आमद रफ़्त बिलकुल बन्द हो जायगी। बाबर यह सुनकर चुप रहा। अगरचे तमाम गुफ़्तगू तुर्की ज़बान में होती थी; मगर शेरख़ाँ तर्जे-कलाम से कुल मतलब समझ गया और उस दरबार में ठहरना मुनासिब न समझकर फिर बिहार के हाकिम के पास जा पहुँचा। वहाँ उसने ऐसा रंग जमाया कि सुलतान महमूद के मरने के बाद खुद बिहार का मालिक बन बैठा; और क़रीब और अतराफ़ के इलाकों और क़िलों को फ़तह करके सन् १५३७ ई० में तमाम बंगाल और पटने पर क़ाबिज़ हो गया। सल्तनत का शौक़ तो मुद्दत से उसके दिल में लहरा ही रहा था। बाबर के मरने के बाद जब उसने देखा कि हुमायूँ और उसके भाई आपस में लड़ रहे हैं और वे और उनके तमाम उमरा ऐशपसन्द और आरामतलब हैं तो उसने बादशाही इलाक़े पर हाथ मारना शुरू किया। तमाम अफगानों के दिलों में इत्तिफाक़ के साथ कौमी तरक्की व हिम्मत व

हौसला की रूह फूँककर उन्हें ऐसा दिलावर बना दिया कि जिधर का रुख़ किया, कामयाबी ने खुश आमदीद का गीत सुनाया। आख़िर कई ख़ूँरेज़ मार्कों के बाद शेरख़ाँ ने हुमायूँ को हिन्दुस्तान से निकाल बाहर किया। १५४० ई० में महज़ अपने कूवते-बाजू से कुल सल्तनत हिन्द का मालिक होकर शेरशाह की लक़ब से तख़्तनशीन हुआ।

अगरचे बेवक़्त की मौत ने उसे पाँच साल से ज़्यादा सल्तनत का इंतज़ाम नहीं करने दिया; मगर इस क़लील ज़माने में उसने रियाया की बेहतरी के लिए ऐसे-ऐसे काम किये, सल्तनत के इंतज़ाम के लिए ऐसे नादिर उसूल बाँधे कि मुश्किल से कोई बादशाह होगा जिसने पचाससाला हकूमत मे भी इससे ज़्यादा यादगारें छोड़ी हों। पन्द्रह बरस क़िले और सल्तनत के हासिल करने में सर्फ़ हुए। सिर्फ़ पाँच बरस अमन से गुज़रे।

शेरशाह की मुंसिफ़ मिज़ाजी सब को मालूम है। उसका क़ौल था कि अदल सल्तनत की बुनियाद है। उसने जा-ब-जा अदालत की कचहरियाँ क़ायम की। खुद अदालत का ऐसा चाहनेवाला था कि जब कोई सितम-रसीदा उसके दरबार में आता तो सब काम छोड़कर उसकी तरफ़ मुतवज्जह होता। और ज़ालिम को—ख़्वाह वह उसके बेटों, अज़ीज़ों या अमीरों ही में से क्यों न होता बग़ैर सज़ा दिये न छोड़ता। वह हमेशा कहा करता था कि बादशाहों के जुल्म व ग़फ़लत और रिश्वतख़ोरी ने मुझे बादशाह बनाया है।

राहज़नी और चोरी को रोकने के वास्ते शेरशाह ने यह क़ानून बनाया था कि चोर और राहज़न मय माल के गिरफ़्तार न हो तो जिस क़दर माल चोरी गया हो, उसकी क़ीमत उस मुक़ाम के हाकिम से दिलवायी जाय। जहाँ चोरी या राहज़नी हुई हो; अगर मुक़ाम के ठीक करने में राय एख़्तलाफ हो तो चारों हदों के हाकिमों से चोरी का माविज़ा दिलाया जाय। गिरफ़्तारी की हालत में चोरों को क़ानूने-इस्लाम के मुताबिक़ सज़ा दी जाय। अगर कोई क़तल हो और क़ातिल पकड़ा न जाय तो आमिला वेदारों के ज़रिये उसका पता लगायें। एक मरतबा इटावे के क़रीब क़तल हुआ। मुक़ामे-क़तल की निस्बत कि किसकी हद में है--हाकिमों में झगड़ा था। जब क़ातिल का पता न चला तब यह मुक़दमा शेरशाह तक पहँचा। बादशाह ने खुफ़िया तौर से दो आदमी तैनात किये कि उस मुक़ाम पर पहुँचकर एक दरख़्त काटें और जो शख़्स उनको मना करे उसको गिरफ़तार करके दरबार में भेज दें। जब यह दोनों आदमी वहाँ पहुँचे और दरख़्त काटना शुरू किया तो एक हाकिम ने आकर रोका। वह गिरफ़्तार होकर बादशाह के रू-ब-रू लाया गया। शेरशाह ने उससे कहा कि इतने फ़ासले पर एक दरख़्त के कटने की तो तुझे ख़बर हो गयी; मगर एक आदमी के गला कटने की ख़बर न हुई? हुक्म दिया कि उस गाँव के तमाम हाकिम क़ैद किये जायँ। अगर तीन दिन के अन्दर क़ातिल को पेश न करेंगे तो उसके एवज़ में वे क़तल किये जायँगे। आख़िर दूसरे ही दिन क़ातिल का पता चल गया और हाकिमों ने कैद से

रिहा पायी। इस सख़्ती का नतीजा यह हुआ कि उसके अहद में राहज़नी या दीगर जुर्म बहुत कम हो गये।

शेरशाह को ज़राअत की तरक्क़ी और हिफ़ाज़त का बहुत ख़्याल था। उसका हुक्म था कि मेरी सल्तनत में हर साल पैमाइश हो। इसी पैमाइश के बमूजिब जिंस की सूरत में मालगुज़ारी वसूल की जाती थी। उसने तमाम मुल्क को परगनों में तक़सीम किया था। हर परगने के वास्ते एक-एक क़ानूनगो मुक़र्रर था। परगने का तमाम ज़राअती हिसाब-किताब उसके जिम्मे था। एक अमीर, एक सफ़आरा, एक खजांची, एक कारकुन, हिन्दी-नवीस, एक फ़ारसी-नवीस, हर परगने म मुक़र्रर थे। हर सरकार में एक आला हाकिम और एक उसका नायब हाकिम रहता था, जो अफ़सरों के जुल्मों और बेदाद से रिआया को बचाते रहते थे। साल-दो साल के बाद हाकिमों का तबादला हो जाता था। लश्कर के कूच की हालत में बादशाह खुद ज़राअत की हिफ़ाज़त करता। अगर किसी सिपाही से ज़रा भी ज़राअत का नुकसान होता तो उसको निहायत सख़्त सज़ा देता था। अगर किसी मजबूरी से ज़राअत पामाल होती तो उसका क़ाफ़ी मुवाविज़ा दिया जाता था। दुश्मन के मुल्क में भी ज़राअत के पामाल करने या रिआया को पकड़ने की इजाज़त न थी। उसका क़ौल था कि रैयत बेगुनाह होती है। वह हमेशा जीतनेवाले की इताअत करती है; पस उसको तबाह करना अपना नुक़सान करना है। यही वजह थी कि दुश्मन के मुल्क में भी उसके लश्कर को हर क़िस्म की रसद कसरत से मिल जाती थी और

उसका मुल्क ऐसा सरसब्ज़ व शादाब था कि क़हत का तो क्या ज़िक्र, कभी ग़ले की गिरानी भी नहीं हुई।

शेरशाह के क़वानीन में से एक यह भी था कि सौदागरों और मुसाफ़िरों की हर तरह से तरफ़दारी की जाय। अगर कोई ताजिर मर जाय तो उसके माल मे दस्तन्दाज़ी न की जाय। और जहाँ तक मुमकिन हो, वारिसों को तलाश करके उनके पास पहुँचा दिया जाय। तमाम मुल्क में सिर्फ़ दो जगह तिजारत के माल पर महसूल वसूल किया जाता था। जब बंगाल की तरफ़ से सौदागर आता तो गढ़ी (सिकरी गली) मे और जब ख़ुरासान की तरफ़ से आता तो सरहद पर महसूल लिया जाता था। दर्मियान किसी का मक़दूर नही था कि किसी किस्म का महसूल वसूल करे। बादशाह और उमरा भी बाज़ार के निर्ख से माल ख़रीदते थे।

हिन्दुस्तान में सबसे पहले अलाउद्दीन ख़िलजी ने जागीर का तरीक़ा मौक़ूफ़ करके फ़ौज को नौकर रखा और दाग़* का ज़ाब्ता निकाला। फ़िरोज़शाह तुग़लक के अहद मे फिर जागीरें मिल गयीं। शेरशाह ने अपने ज़माने में दाग़ के आईन को ताज़ा किया और फ़ौज की जागीरें मौक़ूफ़ करके तनख़्वाहें मुक़र्रर कीं। वह अपने सिपाहियों को बहुत अज़ीज़ रखता था। इसकी फ़ौजें मुल्क की मुख़्तलिफ़ छावनियों में रहती थीं। उनका तबादला होता रहता था।

* सिपाही के घोड़े पर गरम लोहे से दाग़ लगा देते थे।

शेरशाह को ख़ैरात और लोगों की भलाई का बेहद ख़्याल रहता था। फ़कीरों, ग़रीबों और मुहताजों के वास्ते लंगरख़ाने जारी थे, जहाँ उनको लज़ीज़ खाने मिलते थे। इन लंगरख़ानों का ख़र्च पाँच सौ अशर्फ़ी रोज़ाना था। अंधे, लूले, लँगड़े, बूढ़े, बेवा और मरीज़ औरतें – सबके लिये नक़द वज़ीफ़े मुक़र्रर थे। फ़क़ीर और उलेमा और तुलबा के लिये भी वज़ीफ़े मुकर्रर थे। मुसाफ़िरों के आराम के वास्ते उसने चार बड़ी सड़कें बनवायी थीं। एक क़िला रोहतास (पंजाब) से सुनारगाँव (बंगाल) तक –जो चार माह का रास्ता था। दूसरी आगरे से बुरहानपुर (दक्खिन) तक; तीसरी आगरे से जोधपुर और चित्तौड़ तक; और चौथी लाहौर से मुल्तान तक। इन सड़कों पर दोनों तरफ़ खिरनी और आम वग़ैरह के दरख़्त थे। दो-दो कोस के फ़ासले पर सरायें मौजूद थीं। जिनमें हिन्दू और मुसलमान के क़याम के वास्ते जुदा-जुदा इन्तज़ाम था। हर सराय में मुसलमानों के वास्ते मसजिद, इमाम, मवज़्ज़िन, पानी की सबील, ख़िदमत के वास्ते ख़िदमतगार, और हिन्दुओं के वास्ते ब्राह्मण मौजूद रहते थे। एक-एक नक्कारा और दो-दो डाक के घोड़े हर सराय में रहते थे। जब बादशाह दस्तरख़ान पर बैठते, फ़ौरन् नक्कारा बजता था। उसकी आवाज़ सुनकर बराबर की सरायों में नक्कारा बजता चला जाता था। उसी वक्त मुसलमानों को पका-पकाया खाना और हिन्दुओं को दाल, आटा, घी वग़ैरह तक़सीम होता था। घोड़े या बैलों के वास्ते दाना वग़ैरह भी मुफ़्त मिलता था। डाक के घोड़े के ज़रिये शाही

ख़बरें और ख़त दूर-दराज़ मुक़ामात पर भी बहुत जल्द पहुँच जाते थे।

इन आईन व क़ानूनों के अलावा जिनका हाल ऊपर बयान किया गया है और भी बहुत-से छोटे-छोटे क़वानीन शेरशाह की यादगार हैं। उसीने टंके का नाम बदलकर रुपया रखा, जो इसी नाम से अब तक जारी है।

१५४५ ई० मे शेरशाह ने क़िला कालिंजर का मुहासिरा किया। मुहासिरे के दर्मियान एक दिन वह ख़ुद एक मुहासिरे पर खड़ा था। बारूद के गोले क़िले में फेंके जा रहे थे। एक गोला क़िलेकी दीवार पर लगा और टकराकर मोर्चे मे आया। पास ही और गोलों का ढेर लगा हुआ था, एकदम सब भड़क उठे। सैकड़ों सिपाही और सरदार जलकर कबाब हो गये। शेरशाह भी जल गया। कभी होश में आ जाता, कभी बेहोश हो जाता था; मगर जब आँख खोलता तो लश्कर को हमले का हुक्म देता। जो कोई सरदार उसे देखने आता, उससे कहता "यहाँ क्यों आये हो? क्या किला फ़तह हो गया?" लोग सन्दल और गुलाब छिड़कते थे; मगर मौत की तपिश थी। किसी तरह ठंढी न हुई। शेरशाह बार-बार फ़तह की ख़ुश-ख़बरी पूछता था। उधर किसी ने फ़तह की ख़ुश-ख़बरी सुनायी, उसने ख़ुदा का शुक्र अदा किया और उसी वक़्त उसकी रूह जिस्म से निकल गयी और दिल की हज़ारों हसरतें दिल मे ही रह गयीं।

तवारीख़े-हिन्द

# जापानी बच्चों की तालीम

जापान में बच्चे की पैदाइश के क़बल ही वाल्दैन और रिश्तेदारों के फ़रायज़ मे बहुत कुछ इज़ाफ़ा हो जाता है। बच्चे के पैदा होते ही जिस रंग-ढंग से उसकी परवरिश की जाती है वह हमारे लिये निहायत हैरत-अंगेज़ है।

बच्चा पैदा होने से पहले ही वाल्दैन उसके लिये पोशाक तैयार रखते हैं। साफ़ और खूबसूरत ज़र्द रंग का एक कुर्ता और एक सुर्ख़ कोट। ये दो कपड़े उसके लिये क़बल ही से तैयार कराये जाते हैं। उनके ख़्याल मे ज़र्द रंग सेहत और कुवत को क़ायम रखनेवाला है और लाल रंग ख़ुशी की अलामत है। यही वजह है कि जापानी इन दोनों को निहायत आला रंग ख़्याल करते हैं। अगर लड़का पैदा होता है तो उसके लिये नीले रंग का और लड़की होती है तो गुलाबी या लाल रंग का कपड़ा दिया जाता है। ख़ानदान का हर शख़्स बेल-बूटेदार कपड़ों को नयी-नयी कतरब्योंत के साथ तैयार करने मे बड़ी दिलचस्पी लेता है।

इसके बाद उस बच्चे के लिये एक बड़ा जलसा किया जाता है और उस वक्त घर में हर तरफ़ मुसर्रतों का दौरदौरा होता है। बच्चे के पैदा होते ही तमाम मकान साफ़ करके निहायत उम्दा तौर से फ़र्श-फ़रूश से आरास्ता किया जाता है। वह वक्त बड़ी ख़ुशी का

वक्त होता है। कहीं ख़वासें चाय के प्याले लिये हुये इधर-उधर दौड़ती नज़र आती हैं, कहीं खाना पकाने के लिये चावल धोये जाते हैं, कहीं पानी भरा जाता है। जापानी अक्सर मोटा चावल खाते है; लेकिन इस मौक़े पर वे बारीक-से-बारीक चावल इस्तेमाल करते हैं। लड़का पैदा होने के बाद ही उसके वाल्दैन से लेकर मामूली भिश्ती तक के चेहरों पर खुशी के निशान पाये जाते है और हर ख़ास व आम ऐसे मुबारक मौक़े पर ख़ुशी ज़ाहिर करने के लिये कुछ-न-कुछ वसीला तलाश करता है। अपने मरहूम बुजुर्गों और ख़ानदानी देवताओं के नाम पर बच्चे की सलामती की ग़रज़ से तरह-तरह का पका हुआ खाना रखते हैं और लगातार कई रोज़ तक जशन मनाया जाता है। नये बच्चों के सामने तरह-तरह के पकवान रखे जाते हैं। ख़ानदानी लोग और पास-पड़ोसवाले इस वक्त बच्चे के लिए तरह-तरह के तोहफ़े भेजते हैं और बच्चे के वाल्दैन उन तोहफ़ों को क़बूल फ़रमाकर उनके माविज़े मे दीगर उम्दा तोहफे नज़र करते हैं।

पैदाइश के तीसरे रोज़ लड़के का मुंडन होता है। लड़के के सिर के पिछले हिस्से और गिर्द के बाल निहायत छोटे करके बीच मे एक चोटी रख दी जाती है। मुंडन के वक्त बहुत सी मज़हबी रसमें अदा की जाती हैं, जिनको बच्चे के माँ-बाप उसकी जान की सलामती का एक ज़रिया समझते हैं।

लड़के का नाम रखे जाने के वक्त भी एक अजीब व ग़रीब सीन नज़र आता है। घर के बूढ़े लोग—औरतें और मर्द—उस वक्त

आपस में यह सलाह व मशविरा करते हैं कि लड़के का क्या नाम रखा जाय। बाप या बाबा उसमें मौजूद होनेवाले दोस्त व अहबाब के सामने लड़के का नाम किसी मशहूर व मारूफ़ बहादुर शख़्स के नाम पर रखता है। लड़की का नाम किसी ख़ुशनुमा फूल पर रखा जाता है। हाना (फूल), यूकी (बर्फ़) और आई (प्यार) वग़ैरह नाम लड़कियों के लिये इन्तख़ाब किये जाते हैं और देहाती लोग जो आम तौर पर शायरी से नावाक़िफ होते हैं, लड़कियों के लिये मंसूर (देवदार), नाकी (बाँस की छड़ी) और उम्मी (बैर) और लड़कों के लिये अचरद (पहला लड़का), तोशियो (अक़्लमन्द) और आबावर (बहादुर) नाम बहुत पसन्द करते हैं।

बाद एक माह गुज़र जाने पर उस नौनिहाल को अपने गाँव के देवता के पास उसकी वाल्दा या दाया साफ़ व ख़ुशनुमा कपड़े पहनाकर और पीठ पर सवार करके ले जाती है। लड़के का सिर कभी इधर, कभी उधर हिलता और लचकता रहता है। आँखें सूरज की गर्मी से झुलसी जाती हैं, और कपड़ों मे बाज़ वक़्त बच्चे का दम भी घुटने लगता है; मगर अफ़सोस कि उस वक़्त जापानी माँ या दाया बच्चे की इस बेबसी और हालतेज़ार पर रहम नहीं खाती और न ख़बर लेती है। शायद लड़कपन मे इस मुसीबत के बरदाश्त करने के फ़ैज़ ही से लड़का बड़ी उम्र मे हर तरह से रंज व कुल्फ़त बरदाश्त करने और बेइन्तहा मिहनत व कोशिश का आदी हो जाता हो। जापानी पुरोहित का सिर मुँड़ा हुआ और बदन पर पतंगी रंग का चोग़ा होता है।

वह उस बच्चे को अपने देवता के सामने रखकर कुछ मंत्र पढ़ता है और एक सफ़ेद काग़ज़ हाथ में लेकर लड़के के ऊपरी हिस्से को सुहलाता है। जापानियों का एतक़ाद है कि इससे लड़के के दिल पर खुदा की हस्ती का ख़्याल जागज़ीं हो जाता है।

यहाँ तमाम रस्में पूरी हो जाती हैं। इसके बाद घर का हर आदमी लड़के की सलामती के लिये पूरी तवज्जुह करता है। लड़के के नहाने और खाने से लेकर छोटे-बड़े हर काम में इतनी कोशिश की जाती है कि जिसको देखकर बड़ी हैरत होती है। जापानी लोग बच्चों पर देवताओं का सा एतक़ाद और मुहब्बत रखते हैं।

जापानी बच्चों की तालीम का तरीक़ा भी अजीब व ग़रीब है। वहाँ लड़कों को वालदैन और अपने ख़ानदानी बुजुर्गों के हुकमों की तामील करना ज़रूरी नहीं समझा जाता; बल्कि वह ख़ुद लड़के के मंशा व इशारे का ख़्याल रखते हैं। कमसिन बच्चे के दिल में उसी वक़्त रूहानी अज़मत का बड़ा ज़बर्दस्त असर और ख़्याल पैदा हो जाता है, जो उसकी आइन्दा ज़िंदगी के लिये निहायत फ़ायदेमन्द है। अकसर मुक़ामात में देखा जाता है कि बच्चे की ख़्वाहिश और इसरार को भी रोककर उसको एक अच्छी राह पर लाने की कोशिश की जाती है। लेकिन इसका नतीजा यह होता है कि बच्चे का नेचर एक-बारगी बिगड़कर नये रास्ते पर लग जाने से उसकी आइन्दा ज़िन्दगी में होनेवाले बुलन्द हौसलों की बुनियाद ही ख़त्म हो जाती है, जो उसके जौहरे-

आज़ादी का नतीजा होता। क्योंकि इससे उसके आज़ाद ख़्यालात एक-क़लम ख़ाक में मिल जाते हैं। जापान में इन बातों पर बिल्कुल ही ध्यान नहीं दिया जाता कि बच्चा कहाँ है, क्या करता है, क्या खाता है? और न उस पर ध्यान देने की ज़रूरत ही समझी जाती है। यह देखकर कोई शख़्स यह ख़्याल नहीं कर सकता कि जापानी बच्चों की ज़िन्दगी किसी ख़ास तरीक़े की होती है। बच्चा बिछौने से उठकर घुटनों के बल चलकर जिधर दिल में आया, चला गया। जो चीज़ अच्छी मालूम हुई, खींच लाया। जापानी माँ या दाया इसमें हरगिज़ दख़ल नहीं देती, अलबत्ता लड़के पर एक छिपी हुई नज़र रखती है। इस तरीक़े से बच्चे के दिल में अपनी रूहानी ताक़तों का पूरा-पूरा इल्म और एतक़ाद हो जाता है।

बाज़ों का ख़्याल है कि जापानी बच्चे रोना नहीं जानते। हक़ीक़त यह है कि वहाँ लड़के की इतनी ख़ातिर-तवाज़ा की जाती है कि उसको रोने का मौक़ा ख़्वाब में भी नहीं मिलता। पैदाइश के दूसरे ही रोज़ बच्चे की माँ उसको पीठ पर एक थैले में सुलाकर घर के काम-धन्धों में लग जाती है। बच्चे को क़ुवत देनेवाली तमाम ग़िज़ाएँ दी जाती हैं और उसके दिल-बहलाव के लिये तरह-तरह के खिलौनों से घर भरा रहता है। फिर भला बच्चा क्यों रोयेगा?

घर में ख़्वाह कैसा ही जलसा या तक़रीब हो, सबमें लड़का शामिल किया जाता है। कोई भी उसको नज़र-अन्दाज़ करना

पसन्द नहीं करता। लड़के का नाज़ुक और नरम दिल जलसों में जो तालीम पाता है वह निहायत बेशक़ीमत है।

अभी तक किसी के दिल में बच्चे को किसी क़िस्म की तालीम देने का ख़्याल पैदा नहीं होता। जापानी लड़का जब पहले रोज़ स्कूल जाता है तो उसका सिकुड़ा हुआ बदन काँपते हुये पैरों के सहारे खड़ा भी नहीं हो सकता। क्योंकि बच्चे की माँ या दाया उसकी पैदाइश के दिन से उसको एक थैले में डालकर पीठ पर लटकाये रहती है। जिसके बाइस उसका बदन सिकुड़ जाता है और पैर उठने नहीं पाते; बल्कि चलने में थर्थराते हैं। लेकिन बेख़ौफ़ और आज़ाद रूहानी ताक़तों से भरा हुआ दिमाग़ दुनियाँ के नज़्ज़ारे से ऐसा रोशन हो जाता है कि पहले ही रोज़ उसकी हैरतअंगेज़ हालत नज़र आती है।

जापानी बच्चा लड़कपन ही से क़िस्म-क़िस्म की रंगीन और ख़ुशनुमा चीज़ें लेकर खेलता रहता है; जिससे उसकी दिलचस्पी तमाम रंगों में हो जाती है। मामूली खिलौनों से उसका दिल-बहलाव न होने से ख़ुद भी तरह-तरह के खेलने के घर, किश्तियाँ, जहाज़ वग़ैरह बनाता है। जिनसे ख़ास तौर पर उसकी दानिशमन्दी व होशियारी का इज़हार होता है।

जापानी लड़के खेल को ज़्यादा पसन्द करते है। वे अपने दोनों पाँवों के ज़रा मज़बूत और चलने के क़ाबिल होते ही खेल में महो हो जाते हैं। इस वक्त उनके दिलों में एक नया ख़्याल पैदा होता है। वे समझने लगते हैं कि हमको भी एक क़ायदे

का पाबन्द होकर चलना पड़ता है। हमको भी शिकस्त खानी पड़ती है। बच्चा पहली मर्तबा अपने मक़सद में नाकामयाब होने से निहायत आज़ुर्दा दिल होता है। उसकी आँखें डबडबा आती हैं, दिल बेचैन हो जाता है; लेकिन इस तरह नाकामयाब होने पर भी वह समझता है कि मुझको उसूल के साथ अमल करने पर कामयाबी होगी। और यही वजह है कि वह अपने मक़सद में कामयाब होने के लिये नये सिरे से दिलोजान से कोशिश करता है। आख़िरकार कामयाबी हासिल होने पर बाउसूल काम करने का राज़ उसको मालूम हो जाता है।

जापान में मुदर्रिस ही हक़ीक़त में बच्चे की हर क़िस्म की तालीम का भार अपने सिर पर लेता है, और बच्चों के माँ-बाप उसके उस्ताद की जैसी इज़्ज़त व ताज़ीम करते हैं, बयान के बाहर है। इसका नतीजा यह होता है कि लड़के के दिल में यह ख़्याल जागज़ीं हो जाता है कि उस्ताद का हुक्म हमेशा ब-सरोचश्म बजा लाना चाहिये। फिर उसको उस्ताद के अहकाम में चूँ व चिरा करने की गुंजाइश नहीं रहती। इसके अलावा अकसर मुदर्रिस लोग अपनी ज़िम्मेदारियों को बख़ूबी समझकर मुनासिब बर्ताव करने लगते हैं और लड़के के हर क़िस्म के ख़्यालात और कामों पर उसकी पूरी-पूरी तवज्जह रहती है। ऐसे उस्तादों की सोहबत से लड़कों का दिल आला ख़्यालात व तासीरात से भर जाता है।

वहाँ लड़कों को किंडर गार्टन के ज़रिये इब्तदाई तालीम दी जाती है। लड़के तरह-तरह के दिल-बहलाव के खिलौने और चीज़ें

लेकर खेलते और गाते हैं और मुदर्रिस लोग उनको मौक़ा-ब-मौक़ा इम्दाद देते रहते हैं। इसी ज़माने से लड़कों के दिल व दिमाग़ में मुल्की मुहब्बत और राज्य-भक्ति के ख़्यालात जमा दिये जाते हैं। उनका दिल हर क़िस्म के सदमात और तकलीफ़ों के बर्दाश्त करने के क़ाबिल बनाया जाता है। लड़कों को कुछ करना नहीं पड़ता। सिर्फ़ ज़माने-क़दीम के बड़े-बड़े बहादुर और हौसलामन्द मर्दों और औरतों की मशहूर कहानियाँ सुनायी जाती हैं या बच्चों के पढ़ने के क़ाबिल आसान इबारत के नाटकों मे क़लम-बन्द की जाती हैं और लड़के उन नाटकों को खेलते हैं, जिनसे उनको बड़ी ख़ुशी हासिल होती है। इस तरीक़े से लड़कों के दिलों में लड़कपन ही से रिफ़ाहे-आम के लिये क़ुर्बानी का ख़्याल पैदा हो जाता है।

इसके बाद लड़कों को बज़रिये बाहमी सलूक के हराये हुए दुश्मनों पर रहम और हमदर्दी ज़ाहिर करना बतलाया जाता है। लड़कों को यह ख़्याल लड़कपन ही से पैदा होता है और अक्सर छोटे-छोटे लड़कों के गोल-के-गोल ज़ख़्मियों और ग़मज़दों की ख़िदमत के लिये जाते हैं। वे ये फ़र्ज़ कर लेते हैं कि कोई मैदाने-जंग मे ज़ख़्मी हो गया है, कोई तारीकी में रास्ता भूल गया है, कोई फ़ाक़ों से जाँलब हो रहा है। इस तरह नाटक के ज़रिये इन फ़र्ज़ी मुसीबतज़दों की ख़िदमतगुज़ारी से उनके दिलों में जिस लाज़वाल ताक़त का ज़हूर होता है, वही उनकी आइन्दा ज़िन्दगी में जौहरे इंसानियत अता करती है। बचपन ही से लड़कों को

शाहंशाह की अज़मत के मुताबिक़ दिलचस्प क़िस्से सुनाये जाते हैं और अमली तौर पर भी वे राज्यभक्ति का सबक़ सीखते हैं।

किसी ख़ास दिन नयी-नयी पोशाकें पहनकर लड़के स्कूल के कमरे मे जमा होते हैं; गो इन नौनिहालों को अभी चलने-फिरने की ताक़त नसीब नहीं होती; लेकिन जिस वक़्त बच्चों के सामने शाहंशाहे मुअज़्ज़म की मुक़द्दस तसवीर रखी जाती है, वे वफ़ादारी का तहे-दिल से इज़हार करने के लिये तस्वीर के आगे सिर झुकाते हैं, और इस तरह जापानी बच्चे राज्य-भक्ति की तालीम हासिल करते हैं।

जिस वक़्त लड़का किंडर गार्टन की तालीम की ख़त्म कर स्कूल में दाख़िल होता है, उस वक़्त उसका दिल फ़र्ते मुसर्रत से फूला नहीं समाता। तारीख़ मुक़र्ररा के एक दिन क़बल लड़का इस जलसे के लिये तैयार किया जाता है। वह इस रोज़ एक छोटे सिपाही की शक्ल मे उस्ताद के सामने हाज़िर होता है। उस्ताद उसकी इस आला कारगुज़ारी पर एक बड़े काग़ज़ पर मुहर लगाकर सनदे-आज़ादी (सार्टिफिकेट) अता करता है। बच्चा ख़ुर्रम व शाद स्कूल मे जाता है। उसी रोज़ से उसकी तिफ़लाना ज़िन्दगी की शुरूआत होती है।

---

*

# सवाल-जवाब

क्या कहें, जिस काम से इंसान भागे, अदबदाकर वही होता है। मैं बहसा-बहसी और तू तू मैं मैं से सख़्त घबड़ाता हूँ। सवाल-जवाब से मेरी रूह क़ब्ज़ होती है। धड़ेबाज़ी और फ़िक़्रेबंदी से कुछ ऐसा दहला हूँ कि हर शख़्स से बात करते जी डरता है। जभी तो सिवा दो-चार दोस्तों के किसी नज़दीकी रिश्तेदार से भी मेरी दाँत-काटी रोटी नहीं है।

"चाहत अच्छी है किसी से न अदावत अच्छी;
घर भला, आप भले, सबसे क़नाअत अच्छी।"

अकसर सोहबतों से किनाराकशी करके गोशानशीन (एकान्तवासी) हो गया हूँ। जिस शख़्स को अपनी खींचतान में ही सिर खुजाने की मुहलत न मिलती हो, उसे किसी और की भलाई बुराई से क्या काम? क्या मैं कोई ख़ुदाई फ़ौजदार हूँ कि एक जान के लिये हज़ार अज़ाब लगाये रक्खूँ?

मगर नहीं जनाब, इसका नाम है दुनियाँ! यहाँ चूहे के बिल में भी पनाह नहीं मिलती। कोई ग़रीब किसी मुसीबत में हो, यार लोगों को अपनी दिल्लगी से काम। दुबला, मोटा, काला, गोरा, चेचक मुँहा दाग़, ख़ूबसूरत, बदसूरत, दाढ़ी, मूँछ, नज़ाकत, रफ़्तार, गुफ़्तार, ग़रज़ यह कि ऐसी कौन सी चीज़ है, जिस पर उनकी मिहरबानी न होती हो?

इस दर्जे बेलाग होने पर भी लोगों ने मेरा नाम बदनाम कर रक्खा है। मैं कुछ करूँ, किसी को उससे ताल्लुक हो या न हो, बेसबब और बेवास्ता राह-चलते मेरी जान को आ जाते हैं। अब बतलाइये कि जीते-जी मैं कहाँ जा मरूँ, जो सवाल-जवाब की इस बला से बचूँ?

* * * *

हर ख़ुशनुमा चीज़ पर, चाहे वह इंसान हो या हैवान, जानदार हो या बेजान, यह कम्बख़्त दिल लट्टू हो जाता है। इस ख़ब्त में एक बार आयी जो मेरी शामत, तो मैंने काँच के एक मर्तबान में छोटी-छोटी मछलियाँ पाल लीं। साहब, देख-भाल बड़ी चीज़ है। वे नहीं मरीं। उन्हें रवा या डबल रोटी का चूरा डाल दिया करता था। दो-चार हफ़्ते में अच्छी तरह हिल गयीं। वह मर्तबान उन्हें अपना घर मालूम होने लगा। चारा पाकर ख़ूब कुलेलें किया करती थीं, और अगर मर्तबान में उँगली डालकर हिलाएँ तो जैसे किसी ने उन्हें डोरी से खींच दी। एकदम ऊपर आकर उँगली कुतरने लगती थीं। दाँत-वाँत तो उनके मुँह में थे नहीं, इसलिये बजाय तकलीफ़ के बड़ा मज़ा आता था।

वे नन्ही नन्ही-सी जानें दो-तीन महीने में शायद दो-चार माशे चारा खाती होंगी और अगर कभी कुछ न डालो, तो पानी पर ही मगन रहती थीं। बिल्ली कैसी ज़ालिम है कि कबूतर उसे सोते-जागते कोसते रहते हैं; लेकिन जनाब वह भी उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकती थी। कितनी ही बार देखने में आया कि लालचिन

बिल्ली उन्हें देख-देखकर बिलबिला रही है—हाय! यह किस तरह मेरे क़ाबू मे आयें, और मैं इन्हें हड़प कर जाऊँ? मगर न तो वह इतने बड़े भारी मर्तबान को उलट सकी और न पानी में उसका वश चला। बस, यों ही तरस-तरसाकर रह गयी।

इन मछलियों की क्या सजावट और बहार थी! वह मर्तबान क्या था, गोया गागर में सागर बन्द था। कैसा ही परेशान दिल हो, ज़रा मर्तबान सामने रख लीजिये, और फ़िर देखिये तमाशा! कोई मछली बुलबुला पकड़ने के लिये धीरे-धीरे ऊपर आ रही है, कोई मौज में इधर-उधर तैरती फिर रही है। दो मे लड़ाई हो रही है और एक एक का पीछा कर रही है; बाज़-बाज़, मर्तबान की दीवार से मुँह निकालकर लहराती हुई कभी ऊपर आती है और कभी नीचे जाती है। कहाँ तक अर्ज़ करूँ। ज़रा-से मर्तबान मे ख़ुदा की क़ुदरत का तिलिस्म नज़र आता था।

स्पष्ट है कि एक मर्तबान में बन्द मछलियाँ सिवा दिल बहलाने के मुझे और क्या नुक़सान पहुँचाती हैं, या उनकी देख-भाल मे मेरा कौन सा हर्ज हो सकता था? मगर बदक़िस्मती मेरी कि इन भोली-भाली मछलियों की वजह से आने-जानेवालों ने मेरा नातक़ा बन्द कर दिया। दुखदायी सवालों का एक सिलसिला जारी हुआ, जो एक लम्बी मुद्दत तक क़ायम रहा।

तीन-चार नौजवान जिनसे न कुछ जान न पहचान, एकाएक आ नमूदार हुये, और बैठने से पहले उनमें से एक साहब फ़रमाने लगे—ख़ूब! यह तो बड़ा मज़ा कर रक्खा है...आपने... वाह

जनाब कमाल कर दिया.....अहा...क्या ज़रा एक पकड़ लूँ ?

दूसरे साहब (घबड़ाकर)—नहीं-नहीं, ख़बरदार ! हाथ न लगाना ! फ़ौरन् मर जायँगी।

तीसरे—अरे भई, छेड़ने की क्या ज़रूरत है, बस दूर से देखते जाओ।

चौथे—(जो मर्तबान पर टकटकी लगाये अभी तक गुमसुम बैठे थे) मैं भी पालूँगा। ख़ुदा ने चाहा, तो...

दूसरे—मगर आयेंगी कहाँ से ऐसी मछलियाँ ?

पहले साहब—अजी जनाब ! पल चुकीं इनसे ? जिसका काम उसी को साजे ! (गोया मेरे बाप-दादा मछलियाँ पालने का ही धन्धा करते चले आये हैं।)

चौथे—कुछ भी हो, मैं तो चलते वक़्त एक ऐसा ही मर्तबान ज़रूर लेता जाऊँगा।

तीसरे—ऐ, रास्ते में टूट गया तो क्या करोगे ?

इन हज़रत में बात-बात पर बहस हो रही है, और मैं सूरत देख-देखकर घुट रहा हूँ। इलाही ! यह बला कहाँ से नाज़िल हुई ? मुझ ग़रीब पर क्यों करम फ़रमाया ? ये कौन हैं और किस मतलब से आये हैं ? जब नहीं रहा गया, तो मज़बूरन् पूछना पड़ा—साहब, कैसे तशरीफ़ लाये ?

इस पर वे कान खड़े करके चौंके और बोले—माफ़ कीजियेगा, एक मुशायरा होनेवाला है, एस० बी० एस० के हाल में।

मैं—तो फिर मैं क्या करूँ ?

अब हँसे, और एक साथ ही चारों ने कहा—लीजिये... ख़ूब ! अजी साहब ! आपके ही दम का तो ज़हूरा है। इसी महीने की नवीं तारीख़ यानी कल शाम को मय दोस्त और अहबाब के तशरीफ़ लाइये ; मगर टाइम एंगेज्ड है, देर न लगाइयेगा ।

तोबा है ! मछलियों से छुटकारा हुआ, तो यह शाख़ निकली, मुशायरे में जाने की पख़ लगी, और इस बात पर कि इतनी जल्दी मुशायरे की तैयारी न कर सकूँगा, जिरह शुरू हो गयी। उनके सवालात से तंग आकर हामी भरनी पड़ी कि अच्छा साहब, देखा जायगा, तो कहने लगे—देखा जायगा नहीं, हम आपको ज़बरदस्ती पकड़कर ले चलेंगे !

* * *

मछलियों का मर्तबान मेज़ पर रक्खे कुछ लिख रहा हूँ और उस हालत में कि चिड़िया बोले तो ख़्याल उचट जाय कि एक गरज सुनाई देती है—वाह ! क्या कहना है... बहुत अच्छे रहे ; क्यों साहब, यह क्या है ?

इस भूचाली गरज से चौंककर मैंने जो सिर उठाया, तो न जाने कौन बुज़ुर्ग फ़र्माते हैं—क्यों साहब ! यह क्या है ? अस्सलाम अलेकुम !

" अलेकुम, अस्सलाम !"—कहकर मैंने सिर नीचा कर लिया और लिखने लगा। उधर वह साहब धम-धम पैर पटकते

हुये बोले—"क्यों साहब, ये मछलियाँ हैं क्या? मछलियाँ ही हैं न? ...जाने कहाँ से आयी होंगी? (ख़ुद-ब-ख़ुद कहकहा लगाकर) अहा! .... मछलियाँ ...जीती हैं.....तैर रही हैं!" फिर मेज़ पर तोंद टिकाकर आपने मर्तबान के ऊपर चुटकी बजायी और ख़ूब ज़ोर से चीखे—अरे! वह तो नीचे चली गयी! क्यों साहब, मोल ली है? ये क्या खाती होंगी, क्यों साहब?

मैं—उबले रोटी का चूरा।

वह—अच्छा, और गोश्त?

मैं—शायद गोश्त भी खाती होंगी।

वह—शायद क्या? गोश्त ही तो उनका असली खाना है। दरिया में कौन खिलाता होगा इनको?

जी हाँ, ऐसा ही होगा!

वह—होगा नहीं, बल्कि है. क्या आपने देखा नहीं कभी गोश्त खिलाकर?

मैं—कभी इत्तिफ़ाक़ नहीं हुआ।

वह—क्यों ख़ैर, अब सही; मगर बहुत बारीक क़ीमा करके खिलायें, तो शायद खा सकें। ख़ुदा के वास्ते कहीं बड़ी-बड़ी बोटियाँ न डाल दीजियेगा। हरगिज़ न खायँगी; पर गोश्त खिलाइये ज़रूर हमारे कहने से। ..कब से हैं ये आपके पास?

मैं—महीनों हो गये।

वह—और मरीं नहीं बिलकुल?

मैं—जी, कुछ मर गयीं।

वह—अरे मर गयीं ! अफ़सोस ! कैसे मर गयीं ?

मैं—यों ही, बेएहतियाती से।

वह—आपने बेएहतियाती क्यों की ?

मैं—हो गयी !

वह—क्यों हो गयी ? ऐसी बेएहतियाती आपने की कि वे मर गयीं लेकिन अब तो एकदम हिल गयी है। ये अब नहीं मरेंगी, या मर जायँगी ? और क्यों साहब, इनका पानी रोज़ बदलना पड़ता है क्या ?

मैं—जी हाँ !

वह—रोज़ ! अच्छा, दिन में कै बार ?

मैं—दो-एक बार।

वह—और अगर तीन-चार रोज़ न बदलें तो ?

मैं—गँदला हो जाय।

वह—गँदला हो जाय, तो क्या मछलियाँ मर जायँ ?

मैं—(मिन्नत से) जनाब, माफ़ कीजिये। मैं कुछ लिख रहा हूँ। बातों में ख़याल बँटता है, ज़रा लिखने दीजिये।

वह—(कड़ककर) तो लिखिये शौक से, मना कौन करता है ; लेकिन क्यों साहब, यह बच्चे भी देंगी क्या या नहीं बहुत ज़रा-ज़रा से देती होंगी !

मैं—(खून का घूँट पीकर) जनाब, मछलियाँ बच्चे नहीं देतीं।

वह—(हक्का-बक्का होकर मुझे देखा, फिर कहकहा लगाकर) लो भई हम भूल गये। हाँ-हाँ, ठीक है, मछलियाँ तो अंडे देती हैं

अच्छा ख़ैर तो ये अंडे देंगी इस मर्तबान में मगर जगह ज़रा कम है क्यों साहब, उन अंडों से बच्चे निकल आयँगे क्या? लेकिन अगर पानी बदला तो क्या होगा?

अभी वे हटने भी न पाये थे कि एक और हलक फाड़ते हुये आ मौजूद हुये—क्यों साहब ये क्या है? अच्छा, मछलियाँ हैं रंग-बिरंगी क्या जीती हैं? कहाँ से मँगवायी है आपने? यह मछलियाँ बड़ी होकर क्या करेंगी?

सुबह से लेकर रात के बारह बजे तक यही आफ़त रहती थी कि एक आया, लेक्चर देने लगा, दूसरा बेसुरी अलापने लगा और तले-ऊपर सवालों की भरमार कर दी। क्या मजाल जो घंटे डेढ़ घंटे के लिये भी जान छूट जाय।

हज़ारों बार अच्छे पढ़े-लिखे आदमियों ने मना करते-करते मर्तबान घँघोल दिया, पेंसिल और उँगली से मछलियों को परेशान करने की तो गिनती ही नहीं।

अगर मैं उन लोगों से मर्तबान छिपाकर रख देता तो कमरे के बाहर ही से सवाल करते हुये आते—क्यों साहब, आज मछलियाँ कहाँ हैं जरा इधर तो लाइये, कहीं मर तो नहीं गयीं? क्यों साहब, मछलियाँ मरी तो नहीं हैं?

मुझे जवाब देना पड़ता कि जी, नहीं मरीं। फिर ख़ुश होकर फ़रमाते—"तो कहाँ हैं?" और आड़े-तिर्छे होकर कहते—साहब हमें नज़र नहीं आतीं। कहाँ हैं?

मैं—इधर आड़ में रख दी है।

वह—क्यों ?

मैं—लोगों की पूछ-ताछ और सवाल-जवाब के डर से।

इतना सुनते ही वह अपढ़ मेहमान कमरे में आ धमकते और कहते—कहाँ हैं ? वाह ! छिपाने की क्या ज़रूरत थी ? यहाँ रखिये मेज़ पर। हमें बतलाइये, हम उठाये लाते हैं। अभी-अभी !

इस डर से कि कहीं ये ज़ालिम उठाते-धरते मर्तबान न तोड़ डालें, मैं कहते हुए उठा कि—नहीं जनाब, आप तकलीफ़ न करें। मैं ख़ुद उठाये लाता हूँ, कुर्सी पर तशरीफ़ रखिये।

वह—क्यों, क्या हुआ ? क्या हमारे हाथ नहीं हैं ?

मैं—कहीं आपके हाथ से गिर न जाय ?

वह—क्यों गिरेगा ?

उन्हें बात करता छोड़ मैंने मर्तबान मेज़ पर ला रक्खा, और वे फ़ौरन् उसपर झुक पड़े। वह ज़मीन पकड़ी कि हिलने का नाम नहीं। रह-रहकर, एक-न-एक शोशा छोड़ते रहते हैं। फरफर ज़बान चल रही है।

ख़ुदा-ख़ुदा करके वे टले, और इस ख़याल से कि अब कोई गड़बड़ न मचे, दूध का जला मैं मर्तबान छिपाकर पड़ रहा। रात की जगार से आँखों में नींद भरी हुई थी। ज़रा-सी देर में ही खर्राटें भरने लगा।

* * *

ऐन दोपहर को, जब कि चील अंडा छोड़ रही है, मुझे तन-बदन का होश नहीं, मुर्दों से शर्त बाँधकर सो रहा हूँ, मालूम हुआ

कि कोई साहब सिरहाने खड़े आवाज़ दे रहे हैं। आँख जो खोली, तो एक जेंटिलमैन, बग़ल में टोप दाबे, सलाम करते नज़र आये, और छूटते ही क्या कहते हैं—क्यों साहब, वे मछलियाँ क्या हुईं?

उफ़? किस क़दर सदमा हुआ। मैंने इस शख़्स का क्या बिगाड़ा था? इसने अपने मज़े के लिये नाहक़ मुझे सताया—सोते से जगा मारा! ख़ैर उसकी जान का सब्र करते हुये मैंने कहा—जी .मिहरबानी कीजिये .थका-माँदा पड़ा हूँ .फिर किसी वक़्त तशरीफ़ लाइयेगा।

मुझे जवाब देते देख खिलखिलाये, और "क्यों कैसी तबीयत है?"—कहते हुए चारपायी पर आ धमके। चारपायी धच से धचक गयी। तरह-तरह की शक्ल बनाकर मिज़ाजपुर्सी करने लगे। बहुतेरा टाला; मगर ज़रा न सरके, बल्कि घुमा-घुमाकर वही सवाल कर बैठे।

"माफ़ कीजियेगा जनाब! आपको तकलीफ़ तो हुई होगी, मगर मैं एक दोस्त को आपकी मछलियाँ दिखाने लाया हूँ। वे बाहर खड़े हैं। उन्हें बुला लाऊँ? ज़रा आपसे मिलना भी चाहते हैं।" फिर ज़रा ज़ोर से—"आ जाइये साहब अन्दर, मिर्ज़ा साहब जाग रहे हैं।"

दूसरे जेंटिलमैन भी पर फड़फड़ाते हुये आ धमके। अब मज़बूरी थी। एक आह के सहारे उठा, लटपटे पैर डालता हुआ मर्तबान के पास पहुँचा। मारे तकल्लुफ़ (तकल्लुफ़ नहीं शौक़)

के मर्तबान मेरे हाथों से छीने लेते थे। बमुश्किल तमाम मेज़ तक मैं मछलियाँ ला सका।

अब गोया मुझसे ताल्लुक़ ही न था। दोनों मर्तबान पर टूट पड़े, और चीख़-चीख़कर कमरे को सिर पर उठा लिया। इतने पर ही सब्र नहीं हुआ, वे ही बेहूदे सवालात शुरू कर दिये, जिनसे मैं पनाह माँगता हूँ। इस ख़याल से कि जल्द टलें, मैं चारपायी पर करवटें बदलता रहा; मगर वे साहबान बराबर—"इन्हें कहाँ से मँगवायी हैं? क्यों साहब, इन्हें कितना अरसा हो गया? क्या खाती हैं? इन्होंने कभी अंडे दिये कि नहीं? क्या इनका रंग क़ुदरती है" की कचर-कचर से मेरी जान परेशान करते रहे, यहाँ तक कि दिन ढ़ाई का अमल हो गया।

तात्पर्य यह कि इन मछलियों की वजह से क़रीबन् दो साल तक सवालात की बला लगी रही। हर वक्त मुसीबत नाज़िल थी कि क्यों साहब, यह क्या है? भला, क्या मछलियाँ हैं? इन्हें तकलीफ़ नहीं होती? ज़रा-सी मिट्टी भी डाल दिया कीजिये। क्यों साहब, इन्हें किसी बड़े हौज़ में क्यों नहीं रखते? मिट्टी चाटकर मछलियाँ बहुत ख़ुश होती हैं। ये बड़ी होकर कहाँ जायँगी वग़ैरह वग़ैरह।

यहाँ तक कि 'इस्लाह सरहद' नामक एक अख़बार निकालने के निस्बत मैं एक दोस्त को अपना मर्तबान सौंपकर पेशावर चला गया।

पेशावर का आब-दाना अधिक दिनों तक मेरी किस्मतों मे न था। ढ़ाई-तीन महीने में ही मेरा दिल वहाँ से उखड़ा, और छुट्टी के बहाने मैं लाहौर वापस चला आया। मुनासिब देख-भाल न होने के सबब इस दौरान मे मछलियाँ इन्तक़ाल कर चुकी थीं।

गो मछलियाँ मर-खप गयीं, लेकिन सवाल-जवाब का मामला अब भी वहीं-का-वहीं रहा। जो साहब तशरीफ़ लाते, या चलते-फिरते कहीं मिल जाते, मुझसे पहले मछलियों की ख़ैरियत पूछते। फिर उनके मरने का हाल सुनकर, जिस तरह किसी इंसान के मरने पर ग़म ज़ाहिर किया जाता है, पूछ-ताछ करते।

धीरे-धीरे यह बात कि मछलियाँ गुज़र गयीं, जिन-जिन क़द्रदानों को मालूम होती गयी, वे सवाल-जवाब से मेरी रूह क़ब्ज़ करते गये।

"हाय! मर गयीं वे मछलियाँ! बेचारी बहुत अच्छी थीं। क्यों साहब, कैसे मर गयीं? किन साहब के पास छोड़ गये थे? उन्होंने कुछ परवा न की होगी, वरना काहे को मरतीं? इससे हमें ही दे जाते, आपका अहसान होता और मरतीं भी नहीं। उन्होंने पानी न बदला होगा। क्यों, कुछ खाने को डालते थे वे!"

हद है कि अब भी कोई-न-कोई मिहरबान उन मछलियों के बारे में पूछ ही बैठते हैं और मैं सवाल-जवाब के ख़ौफ़ स लरज़ जाता हूँ।

* * *

जाड़े का ज़माना था। पेशावर से चलते वक़्त मैं एक ऊनी चोग़ा लेता आया। बस जनाब फिर क्या था, आ गयी शामत। उस वक़्त लोगों के हुलिये देखने लायक़ थे—कई कई साल के पुराने दोस्त, ज़रा निगाहें चार-चार होने की देर है, लगा रहे हैं कहकहे पर कहकहा।

"अरे भई, यह क्या हुआ?"

मारे हँसी के लोट-पोट हुए जाते हैं? बात का जवाब नहीं देते! वैसे तो मैं समझ गया; मगर चुन्हरा-चुन्हराकर पूछ रहा हूँ—क्यों साहब, क्या हुआ? ख़ैर तो है?

फ़रमाते हैं—यह! ठीक अब हुई शान पैदा। वल्लाह! फोटो खिचवाइये, फोटो।

"क्यों साहब, यह कहाँ से मारा मगर सज़ा ख़ूब अच्छे ख़ासे 'शाहे ईरान' बन गये।"

* * *

अनारकली में जा रहा हूँ, कोई साहब चीख़ते-चिल्लाते आते हैं—अजी जनाब! अजी साहब! मैंने कहा, "आदाब-अर्ज़ है"। "भई बहुत अच्छे रहे। साफ़ बात है, मैं तो पहचाना नहीं। वाह! क्या 'बहरूप' भरा है! बिलकुल पुरानी तसवीरों से नक़्शा मिला दिया। यह है किस विलायत का, क्या कहीं से मँगवाया है"?

मैं—जी, मँगवाया तो नहीं, पेशावर गया था, वहाँ से लाया हूँ।

वह—क्या नया?

मैं—जी नया नहीं तो क्या पुराना ?

वह—(हँसकर) मैं तो ज़रा दिल्लगी से कहता था। बेशक, है तो नया ही · अच्छा, क्यों साहब, इसे क्या कहते हैं ?

मैं—चोग़ा !

वह—ठीक, है तो चोग़ा ही। अब सर्दी तो आपके पास न फटकती होगी। (हाथ से टटोलकर) वाक़ई होगा तो बड़ा गरम। क्यों साहब, आपको लिहाफ़ की क्या ज़रूरत ··मगर इसमें बटन तो हैं ही नहीं।

मैं—चोग़े में बटन नहीं होते।

वह—क्यों ?

मैं—यों ही।

वह—यही तो पूछता हूँ कि बटन क्यों नहीं होते ·और जो कोई लगा ले तो ?

मैं—(जान छुड़ाने के लिये) लगा ले उसकी ख़ुशी।

वह—फिर आपने क्यों नहीं लगाये ?

मैं—इसी तरह रिवाज चला आता है।

वह—लेकिन इस रिवाज से क्या फ़ायदा ? जब लिबास में बटन न होंगे, तो हवा कैसे रुकेगी ? हवा रुकने से सर्दी दबती है, वरना ज़रूर जाड़ा लगेगा। (इधर-उधर देखकर) हम तो जानें, आप बटन ज़रूर लगाइये। चाहे रिवाज हो या न हो। क्यों है न ठीक ?

उनके फ़ज़ूल सवालों से काम का हर्ज़ हो रहा है ; मगर वह रास्ता रोककर खड़े हो गये, जोंक की तरह ख़ून चूस रहे हैं।

अच्छा, और क्यों साहब, इसकी आस्तीनें इतनी लंबी क्यों हैं? (एक आस्तीन उठाकर) इस क़दर लम्बी आस्तीनों की क्या ज़रूरत कि हाथों में पहन लें, तो दोनों तरफ़ सूँडें-सी लटकें?

मैं—जी, बजा है।

वह—हम तो जानें थोड़ी थोड़ी सी कटवा ली जायँ तो कैसा हो?

मैं—बदनुमा हो जायेगा।

वह—क्यों?

मैं—क्या बतलाऊँ।

अब मैं सलाम करके चलना चाहता था कि वे एक क़दम बढ़ाकर सामने आ गये और बोले—नहीं साहब, कुछ तो बतलाइये, हमारी समझ में नहीं आता, इतनी लम्बी आस्तीनें किस काम आती होंगी?

क़िस्सा ख़त्म करने के लिये मैंने जवाब दिया—"बात यह है कि कभी कभी इन आस्तीनों में टाँगे डालकर उल्टा ओढ़ लिया करता हूँ।" इस पर उन्होंने उछलकर कहकहा लगाया—वाह यार! अच्छी गप छेड़ी।

* * *

एक बार दयालसिंह कालेज के मुशायरे में जो मेरी बारी आयी और जनाब अल्लामा 'ताजवर' नजीबाबादी हाज़िरीन से मेरी तारीफ़ कराने लगे, तो फ़रमाते क्या हैं—लीजिये साहब, यह मिर्ज़ा ग़ालिब की रूह आ गयी। ज़रा सकूँ (शान्ति) से आपका कलाम सुनिएगा।

तालिब-इल्मों को ख़ुदा ऐसा मौक़ा दे ! मेरी सूरत और चोग़ा देखकर दोहरे होने लगे, कुरसियाँ पटक पटक दीं, इस ज़ोर से तालियाँ बजायीं, वह चीख़े कि ठंडी सड़क तक लोगों के कान खड़े हो गये।

चोग़ा न हुआ, मुसीबत हो गयी, जिसने शहर में मेरी नाकाबन्दी करा रक्खी थी। जिस तरफ़ जाता, उँगलियाँ उठतीं कि बिस्मिल्लाह वह नाज़िल हो गये, आपको अदब से सलाम कीजिये। (बेवकूफ़ बनाने के लिये।)

पन्द्रह-पन्द्रह सेर का ऊनी चेस्टर लादे हुये जेंटिलमैन चोग़े पर ऐसे पुरमज़ाक (हास्यपूर्ण) सवालात करते थे कि मैं खिसिया-सा जाता था।

* * *

मुद्दतों से मेरा मेदा ठीक हालत में नहीं है। जब देखो, कोई-न-कोई शिकायत लगी ही रहती है, इसलिये सक़ील चीज़ों से सख़्त घबराता हूँ कि पचती नहीं। सुनने में आया कि ख़लासियों वाली गली में कठिया गेहुओं का दलिया मिलता है। वहाँ से कुछ दलिया ले आया, और बजाय-अल्लमगल्लम के उससे नाश्ता करने लगा। इतनी सी बात थी, यारों के हाथ शिगूफ़ा आया। दोस्त-अहबाब मारे सवालों के मेरा ख़ून ख़ुश्क करने लगे।

सुबह ही सुबह एक साहब तशरीफ़ लाये, तो दस क़दम उधर से ही सवाल करते हैं—क्यों साहब, क्या पक रहा है ?

मैं—जनाब, दलिया।

वह—हैं दलिया ! दलिया कैसा ? क्या चाय छोड़ दी ?

मैं—चाय भी पीता हूँ।

वह—और दलिया भी ?

मैं—दलिया पिया नहीं जाता।

वह—(हँसकर) अच्छा साहब, खाया जाता है, यों सही ; मगर आप दलिया खाते क्यों हैं ?

मैं—यों ही नाश्ते के तौर पर।

वह—तो क्या दलिया चाय से ज़्यादा मुफ़ीद है ?

मैं—जी हाँ, जल्द हज़म हो जाता है।

वह—जल्द हज़म ! अच्छा तो क्या मैं भी दलिये का ही नाश्ता किया करूँ ?

मैं—किया कीजिये, कौन मना करता है, शौक़ से दलिये का नाश्ता कीजिये।

वह—शौक़-औक़ तो कुछ है नहीं, अगर आप कहें, तो ख़ैर कर लिया करूँ नाश्ता दलिये का ; मगर क्यों साहब, कहीं पर आँतों में ग़फ़ तो नहीं बैठा देगा।

मैं—गफ़ क्यों बैठाने लगा ? दलिया सक़ील ग़िज़ा नहीं है। हमारी तरफ़ तो कमज़ोर को खिलाते हैं।

वह—जी ! मगर मैं मरीज़ थोड़े ही हूँ ! अलबत्ता यहाँ की आबोहवा के मुवाफ़िक़ न होने के सबब ऐसी-वैसी चीज़ें हज़म नहीं होतीं, पेट में गड़बड़ रहा करती है।

मैं जवाब देते-देते उकताया जाता हूँ; पर वह बराबर कैंची की तरह ज़बान चला रहे हैं—सिवा दलिये के और कोई मज़मून ही नहीं सूझता। मालूम होता है कि दुनियाँ के धन्धों से आज आपने छुट्टी ले ली है, और आज दलिये की पूरी-पूरी तहक़ीक़ात किये बग़ैर हटनेवाले नहीं। बड़ी सख़्त आफ़त है! उठूँ तो बेहूदगी, बैठे रहने में हँड़िया बिगड़ने का डर, उधर उनके सवालों का तार नहीं टूटता कि ज़रा दम लें तो कुछ किया जाय।

बड़ी मुश्किल से जब 'माफ़ कीजियेगा' कहकर उठा, तो कोयलों के तेज़ होने की वजह से हँड़िया का तला लग चुका था। उनसे भी न रहा गया, अँगीठी तक मेरे साथ चले आये। जिस वक़्त तला लगने का इल्म हुआ, तो मुझपर बरस पड़े, फ़ौरन् जिरह शुरू कर दी—क्यों साहब, यह क्या हुआ? जब आपको पानी-आग का अन्दाज़ा नहीं, तो 'रिस्क' बिगाड़ने से क्या फ़ायदा? पानी ज़्यादा रखना चाहिये था, और ज़रा उठकर देख क्यों न लिया? हमसे कहा होता, हम ही पका देते। आप रोज़ इसी तरह दलिये का सत्यानाश कर लिया करते होंगे।

मैंने कहा—जनाब आली! इन बातों की क्या ज़रूरत है? जो हो गया, सो हो गया, तो तड़पकर बोले—अजी जनाब, ज़रूरत क्यों नहीं? आपकी इतनी मिहनत बेकार गयी। हर काम का सलीक़ा चाहिये। क्यों साहब, क्या यह बिलकुल काम का ही नहीं रहा हम तो जानें, आप दलिये का नाश्ता ही न किया कीजिये ·· बड़ा खटराग है ··शायर होकर ऐसी आफ़त क्यों पाल रक्खी है?

अच्छा, अब मैं जाता हूँ···आपको फ़ुरसत ही नहीं · जाऊँ, आदाब-अर्ज़ है।

उनके चले जाने पर अगर थोड़ा-बहुत ख़ुरच-खुरचाकर खा भी लिया, तो बहसा-बहसी के सदमे से क्या अंग लगता, जल्दी पचने का क्या काम, वह तो मेरे हज़म मे घातक ज़हर हो गया।

* * *

जब बाल खिचड़ी होने लगे तो, एक बार मैंने सिर, दाढ़ी और मूँछों में मेंहदी लगायी। गर्मियों का मौसम था। वह मज़ा आया, जैसे कोई ठंडी-ठंडी फुरहरी दिमाग़ से चलकर दिल को गुदगुदाती हुई रग-रेशे मे तैरकर मज़े से पैर के अँगूठे तक जा रही है। वल्लाह! रोंगटा रोंगटा सुख पाने लगा। जन्नत का मज़ा आ गया। फिर कुछ इस ख़याल से कि बाल अभी तिल-चावल हैं, बेक़ायदे तौर पर कहीं-कहीं सुफ़ेद अच्छे नहीं मालूम होते, मेंहदी से ज़रा मिलते-जुलते हो जायँगे, और कुछ मज़ा भी आता था। बस, मैं अकसर मेंहदी लगाने लगा।

अब मुलाहज़ा फ़रमाइये कि क्या मुसीबत आती है! पहले-ही-पहल जो मेंहदी लगाकर घर से निकला तो गोया सर मुँड़ाते ही ओले पड़े, अलावा हर सलाम-दुआ के, इस सिरे से उस सिरे तक मेरे सिर की इस तरह जाँच-पड़ताल हुई कि देखना यह वही है कि कोई और!

एक मेहरबान दूर से ही बुरी तरह घूरते चले आते हैं, नज़दीक पहुँचते-पहुँचते दहाड़े—वाह भई, वाह! हद कर दी।

अरे भई, ख़ुदा की क़सम, हमने तो पहचाना भी नहीं। यह क्या हुआ? क्या मेंहदी लगायी हैं? कब से लगने लगी है? अब हमेशा लगा करेगी?

इनसे निपटकर चार क़दम चला था कि आवाज़ आयी—आदाब बजा लाता हूँ जनाब आली!...मैं बड़ी देर से दूकान पर बैठा ताड़ रहा था अच्छी धजा बनायी आज तो मामला ही कुछ और हो गया मगर रही ठीक सूरत पर नूर बरस रहा है।

अभी कुछ ज़्यादा दूर नहीं गया हूँगा कि एक एडीटर से मुठभेड़ हो गयी, और उन्होंने छूटते ही हमला कर दिया—क्यों साहब, यह क्या सूझी? भई, ख़ूब रंग आया ..और क्या...आप भी कुछ-न-कुछ करते-धरते ही रहते हैं?

ग़रज़ अनारकली के चौराहे तक पहुँचते-पहुँचते आधी जान रह गयी!

* * *

मेहदी लगाये अपने कमरे मे बैठा हूँ। तीन-चार अहबाब आ धमके, और लगे तरह-तरह की बोलियाँ बोलने—लीजिये साहब, वह यह रहे आइये, ज़रा शान मुलाहज़ा कीजिये हर वक़्त मेंहदी लगा करती है!

दूसरे—क्यों जनाब, आप रोज़ाना मेहदी लगाते हैं?

तीसरे—अरे भई, मेंहदी न लगायें, तो करें क्या? इन्हें और काम ही क्या है?

चौथे—क्यों साहब, क्या वाक़ई रोज़ाना मेंहदी लगाते हैं?

मैं—जी नहीं।

पहले—जी नहीं के क्या मानी, हम तो जब आते हैं, आपका यही हाल रहता है।

चौथे—क्या आपको कुछ मज़ा आता है इसमें ?

मैं—मज़ा-वज़ा काहेका ?

"हा-हा-हा-हा ! मज़ा नहीं आता, तो यह 'हरकत' क्यों की जाती है ?

मैं—ख़ूब ! जनाब, दुनियाँ मे बेशुमार इंसान मेंहदी लगाते हैं। मैंने लगा ली तो कौन सा सितम किया ? क्या यह कोई नाशाइस्ता (अशिष्ट) काम है जो आप फ़रमाते हैं 'हरकत' ?

वह—हरकत से हमारा यह मतलब नहीं था। ग़रज़ यह कि आप बहुत मेंहदी लगाते हैं।

मैं—तो आपका क्या हर्ज है ?

वह—अजी, हर्ज-वर्ज किसी का क्या हो सकता है ! हम तो आपकी हमदर्दी से कह रहे हैं कि फ़ज़ूल वक़्त ख़राब करने से क्या फ़ायदा ? इतनी देर कोई काम की बात कीजिये।

तीसरे—मेंहदी से बाल कुछ स्याह भी तो नहीं होते, फिर आप इतनी खटपट क्यों करते हैं ?

मैं—किसी क़दर ठंडक पहुँचाती है।

चौथे—ठीक ! आज मालूम हुआ। उन लोगों की बेवक़ूफ़ी है, जो शरबत, ठंडाई वग़ैरह मे पैसा बरबाद करते हैं, मेंहदी ही लगा लिया करें, तबीयत तर हो जाया करेगी।

तीसरे—और चाहे पानी में घोलकर पी ही न लिया करें !

पहले—क्यों साहब, आपकी यही मंशा है !

मैं—ख़ुदा के वास्ते कोई और ज़िक्र कीजिये। इस झक से क्या फ़ायदा ?

मगर मेरी मिन्नतों पर वे कब बाज़ आने लगे। जब तक बैठे रहे, ऐंड़े-बेंड़े सवालों से मुझे तंग करते रहे।

* * *

किसी के भले में, न बुरे में ; घर बैठे दुनियाँ चैन नहीं लेने देती। कोई कहता है कि इस क़दर मेंहदी न लगाया करो ; कहीं रूई-मार्का ख़िज़ाब की सलाह दी जाती है ; बाज़ फ़रमाते हैं कि चेहरा बुरा मालूम होता है ; कितने ही मेहरबान रोग़न इस्तेमाल करने के क़ायल हैं ; सौ-पचास ने खाने के ख़िज़ाब पर ज़ोर डाला ; कितने ही दोस्त मेंहदी लगाने से नाराज़ होकर कहते हैं—हम नहीं जानते, अभी-अभी मुँह धोकर हमारे साथ सैर को चलना होगा ; एक अप-टू-डेट जेंटिलमैन ने सबके कान काटे, निहायत धड़ल्ले में फ़रमाया—कुछ नहीं, तरक़्क़ी का ज़माना है। हमारी राय में दाढ़ी-मूँछ का सफ़ाया कर डालना अच्छा है। न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी। न-मालूम कितने दोस्तों के दिलों में इस मेहदी की वजह से कुछ ऐसी गाँठ पड़ी कि उन्होंने आना-जाना ही छोड़ दिया।

* * *

गो पुरानी चाल के मुताबिक़ मुझे तलवार बाँधने का शौक़ तो ग्वालियर में भी कभी नहीं रहा—जहाँ बनिये-बक्काल तक तोपची बने फिरते हैं; लेकिन किसी-न-किसी क़िस्म की लकड़ी या चोब-दस्ती हमेशा हाथ में रखता हूँ, और यह 'बात' आजकल की तहज़ीब के एकदम ख़िलाफ़ है कि एक शायर लठ बाँधकर मुशायरे में जाय। लिहाज़ा जब देखो, मेरी लकड़ी पर बहस हुआ करती है। वे मज़ेदार सवालात किये जाते हैं कि क्या कहूँ।

"क्यों साहब, तो यह डंडा है आपका डंडा है यह क्यों ?"

मैं—है तो डंडा ही।

वह—(कहकहा लगाकर) वही तो मैं भी कहता हूँ कि डंडा है क्यों साहब मैंने कहा कि कितना होगा वज़न में ?

मैं—होगा कोई सेर-तीन पाव का !

वह—अच्छा, (हाथों में तौलकर) बड़ा बोझल है क्यों साहब, इससे आपके हाथ नहीं दुखते ?

मैं—जी नही ।

वह—आप कब से बाँधते हैं यह डंडा ?

मैं—बरसों हो गये ।

वह—(ज़मीन पर ठोंककर) लकड़ी का है ; मगर है अजीब। क्यों जनाब, यह हाथ फिर-फिराकर चिकना हो गया होगा शायद या नहीं !

मैं—जी हाँ।

वह—अगर यह खो जाय तो ?

मैं—दूसरा ले लूँगा।

वह—वाह-वा ! मालूम होता है, जैसे रोग़न फिरा हो, (दुबारा हाथ फेरकर) मगर रोग़न तो नहीं है शायद इस पर ·· क्यों साहब ?

मैं—जी नहीं।

वह—क्यों साहब, क्या मैं भी ऐसा ही डंडा बाँधा करूँ ?

मैं—बाँधा कीजिये, मेरा क्या नुक़सान है ?

वह—आपका तो कुछ नुक़सान नहीं है ? मगर मैं ऐसा हर्गिज़ नहीं करूँगा।

मैं—अच्छा।

वह—नही साहब, लोग क्या कहेंगे कि यह लो, इसकी अक़्ल मारी गयी है, जो डंडा बाँधने लगा बस, आपको ही मुबारक रहे। और क्यों साहब, और किसी को एक-आध रसीद कर दिया जाय तो क्या हो ?

मैं—रसीद ही क्यों किया जाय ? ख़्वाहमख़्वाह !

वह—ख़्वाहमख़्वाह क्यों ? लड़ायी-भिड़ायी में ऐसा मौक़ा आ सकता है, फिर रहे तो मज़ा। मेरे ख़याल में आदमी पानी न माँगे, एक ही में ढेर हो जाय (ज़मीन पर ठोककर) मगर पड़े भरपूर।

डंडा, डंडा न हुआ, बवाले-जान हो गया। जहाँ जाता हूँ, डंडे पर सवालों की भरमार कर दी जाती है। कहाँ तक चौमुखी

लड़ूँ। और तो और, बाज़ हज़रात मुझे डंडेवाला बाबा मशहूर करते फिरते हैं, गोया मैं ख़ुद ही डंडा हो गया हूँ।

* * *

बीड़ी सुलगाते-सुलगाते किसी साहब ने दरवाज़े में से झाँककर कहा—क्या अन्दर आ सकता हूँ है इजाज़त ?

फिर जवाब का इन्तज़ार किये बग़ैर यह कहते हुये तशरीफ़ ले आये—अच्छा, आप बीड़ी उड़ा रहे हैं ! मिज़ाज शरीफ़ (यानी सलाम नदारद) क्यों साहब, बीड़ी पी जा रही है ? आप बीड़ी बहुत पीते हैं।

मैं—जी, तस्लीमात अर्ज़ ! पीता तो हूँ।

वह—(हाथ हिलाते हुये) क्यों पीते हैं, इसमें क्या मज़ा आता है आपको ?

मैं—कुछ नहीं।

वह—(कड़ककर) तो फिर पीते काहे को हैं ?

मैं—यों ही तलब हो गयी है।

वह—क्यों हो गयी है ?

मैं—बदक़िस्मती मेरी !

वह—नहीं, बदक़िस्मती...बदक़िस्मती हम नहीं जानते। आप बीड़ी न पिया करें, बहुत नुक़सान करती है, ख़ासकर फेफड़ों को।

मैं—जी हाँ, करती तो है।

वह—चलो शुक्र है. मान तो गये . मगर फ़ज़ूल...हम तो जब जानें कि आप छोड़ दें।

मैं—मज़बूर हूँ, नहीं छूटती।

वह—वाह! छूटती कैसे नहीं, आप ख़ुद छोड़ना नहीं चाहते, वरना जनाब! इंसान दिल पर रक्खे तो सब कुछ हो सकता है, लोग तो शराब और अफ़ीम तक छोड़ देते हैं।

मैं—बेशक, छोड़ तो देते हैं।

वह—तो बस, आप भी फ़ौरन् बीड़ी छोड़ दीजिये, और पक्का इरादा कर लीजिये हमारे सामने कि आज से बीड़ी हर्गिज़-हर्गिज़ न पीयेंगे।

मैं—ओफ्फ़ोह! इस क़दर जल्द!

वह—जल्द नहीं तो और क्या?

मैं—अच्छा, देखा जायगा।

वह—देखा-वेखा नहीं जानते, इसी वक़्त से लानत भेजिये।

मैं—बीड़ी ऐसी कुछ ज़्यादा नुक़सानदेह तो नहीं, यों ही एक शग़ल है।

वह—लो, मुज़िर ही नहीं! अजी जनाब, आप जानते नहीं, हमसे पूछिये। तम्बाकू में निकोटीन होता है हलाहल ज़हर, जिसकी एक बूँद से साँप भी मर जाय। बीड़ी पीने से ही मेरे क़ादर (वालिद नहीं) का हार्ट फ़ेल हो गया था।

* * *

तो जनाब, जैसा कि पहले अर्ज़ कर चुका हूँ, इस सवाल-जवाब की थुक्का-फ़ज़ीहती के मारे मैं किसी से ज़्यादा रब्त-ज़ब्त

नहीं रखना चाहता; लेकिन आखिर इंसान ही हूँ, क्या करूँ? दो-चार दोस्त हैं ही, जिनमें मिल-बैठकर वक़्त काट लिया करता हूँ।

इन्हीं इने-गिने दोस्तों मे मेरे एक हमदर्द हैं प्रोफेसर 'वाक़िफ़' साहब। उनकी मिहरबानियों का नतीजा यह है कि अकेला तो हूँ ही, हफ़्तों अपने घर की ख़बर नहीं लेता, अक्सर उन्हीं के घर सोता हूँ। किसी से ज़्यादा पेंगें बढ़ायी नहीं, न उठने-बैठने के दस-बीस ठिकाने हैं कि वहाँ जाऊँ। दिन-भर इधर-उधर के झगड़े नहीं छेड़ते; शाम को चन्द दोस्त मुमताज़ होटल में जा बैठते हैं; वहीं रात के ग्यारह-बारह बजे तक मजलिस गरम रहती है।

अभी कोई दस-पन्द्रह दिन का ज़िक्र है। एक दिन वाक़िफ साहब की तबीयत किसी क़दर नासाज़ थी। इस वास्ते वह पहले ही उठकर चले आये। मैं वहाँ बैठा रह गया। बातों-बातों मे रात के बारह बज गये। जब वापस आया, तो वे छत पर जाकर सो चुके थे। इस वास्ते कि कहीं जाग न पड़ें, मैं दबे पाँव छत पर पहुँचा और गर्मी के सबब कुरता उतारकर जँगले पर डाल रहा था, इतने में उठी जो खाँसी, तो उनकी नींद उचट गयी; मगर नींद का ज़ोर था, इसलिये यह कहकर—"तशरीफ़ ले आये क्या?" —उन्होंने फिर आँखें बंद कर लीं।

दो-एक बार मुझे ख़्याल आया कि इस वक़्त तो पसीने-पसीने हो रहा हूँ; मगर शायद रात को सर्दी लगे, और ठंडी हवा नुक़सान पहुँचाये, लिहाज़ा कुरता जँगले से उतारकर फिर पहन

लिया। अब बीड़ी बुझ चुकी थी। ज्यों ही मैंने दियासलाई रगड़ी, उसकी चमक से दुबारा उनकी आँख खुल गयी। अध-खुली आँखों से मेरी तरफ़ देखा और भर्रायी हुई आवाज़ मे फ़रमाते क्या हैं—यह कुरता क्यों उतारा और क्यों पहना?

फिर क्या था, मुझ पर हँसी का एक सख़्त दौरा पड़ा, वोटियाँ काट-काट लीं; मगर हँसी थी कि रोके न रुकी। इस खिलखिल से 'वाक़िफ़' साहब जाग पड़े और—"क्यों साहब, क्या है, क्या हुआ? या अल्लाह! ख़ैरियत..." वग़ैरह-वग़ैरह कहा, और ख़ुद भी मेरी बेवक़ूफी पर हँसने लगे। वह बार-बार हँसी का सबब पूछते, और मुझे रह-रहकर हँसी चली आती। बहतेरी कोशिश की; मगर बजाय कमी के इन सवालों से मेरी हँसी में ज़्यादती होती गयी। कितनी ही दफ़ा जवाब देना चाहा; लेकिन कामयाब न हो सका। जब दौरे में किसी क़दर कमी हुई, तो मैंने दम लेकर कहा—क्या बताऊँ ...आपकी बड़ी मेहरबानी हुई, .. आपके एक फ़िकरे ..से हज़ारों नज़्ज़ारे मेरी.. आँखों में फिर गये · अब मुझे एक चटपटा मज़मून लिखना पड़ा।

यह सुनकर उन्होंने ताज्जुब से पूछा तो कैसा मज़मून, तो मुझे फिर हँसी आ गयी। वह क्यों? इस ख़याल से कि ख़ुदा ख़ैर करे, लीजिये सवाल-जवाब शुरू हो गये; मगर वे कब ख़ामोश होनेवाले थे। फ़ौरन् सवाल किया— क्यों हँसी आ रही है? क्या मज़मून सूझा?

मैंने कहा—कुछ न पूछिये। तबीयत अलील, नींद का ज़ोर,

बदन मिट्टी हो रहा है। बात नहीं निकलती, ज़बरदस्ती नींद से लड़-लड़कर दीदे फाड़े जा रहे हैं; मगर यह जानने की सख़्त ज़रूरत है कि "कुरता क्यों उतारा और क्यों पहना गया" गोया यह इतना ज़रूरी है कि आधी रात को सो जाना चाहिये, नहीं तो दुनियाँ के सारे कारबार बन्द हो जायँगे—शायद मुर्ग़े की अज़ान से पहले ही गड़बड़ शुरू हो जाय।

* * *

अब ख़याल कीजिये कि जब ऐसे-ऐसे पढ़े-लिखे आदमी सवालों के बहाने दिन-रात मेरा सिर चाटा करते हैं, तब मामूली लोगों की तो कुछ गिनती ही नहीं।

सच कहूँ! मुझे यक़ीन हो गया है कि इस सवाल-जवाब की बला से ज़िन्दगी-भर जान न छूटेगी।

ख़ैर, बहुत सी कट गयी है—थोड़ी सी रह गयी है। सता लें। जीते-जी न सही, तो मरने के बाद तो छुटकारा मिलेगा ही।

लेकिन नहीं साहब। रसूल-अल्लाह का फ़रमान है कि पहली मंज़िल में उतरते ही दो देवदूत—मुनकिर और नकीर—सावल करेंगे कि किसका बन्दा है, किसका चेला है और क्या है दीन तेरा?

फिर ठीक-ठीक जवाब मिलने पर जन्नत की खिड़की खुल जायेगी, वरना इंसान जहन्नुम में दाख़िल कर दिया जायगा। अच्छा चलो! यह भी ग़नीमत है, यों ही सही। इस दो टूक फ़ैसले के बाद तो हमेशा के लिये, सवाल-जवाब से फ़ुरसत है।

मगर नहीं, मैं भूलता हूँ, तो यह फ़ुरसत कैसी ? क़ुरान पाक कहता है कि क़यामत के दिन, जब कि हश्र बरपा होगा, अल्लाह मियाँ इंसाफ़ के तख़्त पर बैठकर यही काम शुरू कर देंगे। मीज़ान-अदालत खड़ी कर दी जायगी, हाथ में सब के कामों का लेखा-जोखा होगा, बही-खाते खोल दिये जायँगे, और दोस्त-दुश्मन की मौजूदगी में भूखे-प्यासे इंसान से एक-एक बूँद का हिसाब लिया जायगा। सख़्ती से सवालात होंगे—

इतना पानी क्यों बखेरा, ज़्यादा खाना क्यों खाया, बहुत बकवास क्यों की, अन्धाधुन्ध चलकर इतनी चींटियाँ क्यों मारीं, ख़्वाहमख़्वाह जाग-जागकर बीमार क्यों पड़ा, कई-कई घंटे झूठे-सच्चे लेक्चर देने की क्या ज़रूरत थी, टाँगेवाले से क्यों लड़ मरा, तोता क्यों पाला, गधे को क्यों मारा, आपने चूहे पकड़-पकड़ के पड़ोसियों के घरों में क्यों छोड़े, पराये खेतों से मक्के के भुट्टे चुरा-चुराकर क्यों खाये, जंगली कबूतरों के अंडे क्यों उतारे, रोता बच्चा छोड़कर यार-दोस्तों के साथ सिनेमा क्यों चला गया, रात के वक़्त गा-गाकर मुहल्लेवालों की नींद क्यों हराम की, भंगिन को भला-बुरा क्यों कहा, मुहल्ले के मुल्लाजी के सलाम का जवाब क्यों नहीं दिया ?...वग़ैरह-वग़ैरह।

ख़ुलासा यह है कि सवाल-जवाब के अज़ाब से हश्र तक छुटकारा नहीं।

—मिर्ज़ा फ़हीमबेग चग़ताई

# विक्रमादित्य का तेग़ा

## ( १ )

बहुत ज़माना गुज़रा। एक रोज़ पेशावर के मौज़ा माहनगर में क़ुदरत का एक हैरत अंगेज़ करिश्मा नज़र आया। अँधेरी रात थी। बस्ती से कुछ दूर बरगद के नीचे एक आग का शोला दिखलायी पड़ा, और एक झलमलाती हुई शमा की तरह नज़र आने लगा। गाँवों में बहुत जल्द यह ख़बर फैल गयी। बाशिन्दे यह अजीब और ग़रीब नज़्ज़ारा देखने के लिए जावजा इकट्ठे हो गये। औरतें जो खाना पका रही थीं, हाथों में गूँधा हुआ आटा लपेटे बाहर निकल आयीं। बूढ़ों ने बच्चों को कन्धे पर बैठा लिया और खाँसते हुए आ खड़े हुये। नवेली बहुएँ हया से बाहर न आ सकीं; मगर दरवाज़ों की दराज़ों से झाँक-झाँककर अपने बेक़रार दिलों को तसकीन देने लगीं। उस गुम्बदनुमा दरख़्त के नीचे अंधेरी के उस अथाह समद्र मे रोशनी का यह धुँधला शोला गुनाहों के बादलों में घिरी हुई रूह की शक्ल में मिसाल पेश कर रहा था।

टेकसिंह ने ज़नानी अन्दाज़ से सिर हिलाकर कहा—मैं समझ गया, भूतों की सभा हो रही है।

पंडित चेतराम ने आलिमाना यक़ीन के साथ फ़रमाया—

तुम क्या जानो, मैं तह पर पहुँच गया। साँप मणि छोड़कर चरने गया है। इसमें जिसे शक हो, जाकर देख आये।

मुंशी गुलाबचन्द बोले—इस वक़्त जो वहाँ जाकर मणि को उठा लाये, उसके राजा होने में शक नहीं; मगर जान जोखों है।

प्रेमसिंह एक बूढ़ा जाट था, वह इन महात्माओं की बातें बड़े ग़ौर से सुन रहा था।

( २ )

प्रेमसिंह दुनियाँ में बिलकुल अकेला था। उसकी सारी उम्र लड़ाई-झगड़ों में सर्फ़ हुई थी; मगर जब ज़िन्दगी की शाम आयी और वह सुबह की ज़िन्दगी के टूटे-फूटे झोंपड़े में फिर आया, तो उसके दिल में एक अजीब ख़्वाहिश पैदा हुई। अफ़सोस! दुनियाँ में मेरा कोई नहीं। काश, मेरे भी कोई बच्चा होता! जो ख़्वाहिश शाम के वक़्त चिड़ियों को घोसले में खींच लाती है, और जिस ख़्वाहिश से बेक़रार होकर जानवर शाम को अपने थानों की तरफ़ चलते हैं, वही ख़्वाहिश प्रेमसिंह के दिल में मौजें मारने लगी। ऐसा कोई नहीं, जो सुबह के वक़्त दादा कहकर उसके गले से लिपट जाये। ऐसा कोई नहीं, जिसे वह खाने के वक़्त लुकमे बना-बनाकर खिलाये। ऐसा कोई नहीं, जिसे वह रात के वक़्त लोरियाँ सुना-सुनाकर सुलाये। यह आरजुएँ प्रेमसिंह के दिल में कभी पैदा हुई थीं; मगर सारे दिन की तनहाई ऐसी ग़मनाक नहीं होती, जैसी शाम की।

एक रोज़ प्रेमसिंह बाज़ार गया हुआ था। रास्ते में उसने

देखा कि एक घर में आग लगी हुई है। आग के बुलन्द और ख़ौफ़नाक शोले हवा में अपने फरेरे लहरा रहे हैं, और एक औरत दरवाज़े पर खड़ी सिर पीट-पीटकर रो रही है। यह ग़रीब बेवा औरत थी। उसका बच्चा अन्दर सो रहा था कि घर में आग लग गयी। वह दौड़ी थी कि गाँव के आदमियों को आग बुझाने के लिये बुला ले कि इतने में आग ने ज़ोर पकड़ लिया और अब जलते हुये शोलों का उमड़ा हुआ दरिया उसे उसके प्यारे बच्चे से अलग किये हुये था। प्रेमसिंह के दिल मे उस औरत की दर्दनाक आहें चुभ गयीं। वह बेख़ौफ़ आग में घुस गया और सोते हुये बच्चे को गोद मे लेकर बाहर निकल आया। बेवा औरत ने बच्चे को गोद में ले लिया और उसके नाज़ुक रुख़सारों को बार-बार चूमकर आँखों मे आँसू भर लायी, और बोली---महाराज, तुम जो कोई हो, मैं आज अपना प्यारा बच्चा तुम्हें भेंट करती हूँ। तुम्हें ईश्वर ने और भी लड़के दिये होंगे। उन्हीं के साथ इस यतीम की भी ख़बर लेते रहना। तुम्हारे दिल मे रहम और तरस है। मेरा सब कुछ अग्नि देव ने ले लिया। अब इस तन पर के कपड़े के सिवा मेरे पास और चीज़ नहीं है। मैं मज़दूरी करके अपना पेट पाल लूँगी। यह बच्चा अब तुम्हारा है।

प्रेमसिंह की आँखें डबडबा गयीं। बोला—बेटी, ऐसा न कहो। तुम मेरे घर चलो, और ईश्वर ने जो कुछ रूखा-सूखा दिया है, वह खाओ। मैं भी दुनियाँ मे बिलकुल अकेला हूँ। कोई

पानी देनेवाला नहीं। क्या जाने, परमात्मा ने इसी बहाने हम लोगों को मिलाया हो।

शाम के वक़्त जब प्रेमसिंह घर लौटा, तो उसकी गोद में एक हंसता हुआ गुलज़ार बच्चा था, और पीछे-पीछे एक ज़र्द और मुरझायी हुई औरत। आज प्रेमसिंह का घर आबाद हुआ, आज से उसे किसी ने शाम के वक़्त नदी के किनारे ख़ामोश बैठे नहीं देखा।

उसी बच्चे के लिये साँप का मणि लाने का क़स्द करके प्रेमसिंह आधी रात के वक़्त कमर से तलवार लगाये, चौंक-चौंककर क़दम रखता बरगद के दरख़्त की तरफ़ रवाना हुआ।

जब दरख़्त के नीचे पहुँचा, तो मणि की दमक ज़्यादा साफ़ नज़र आने लगी; मगर साँप का कहीं पता न था। प्रेमसिंह बहुत ख़ुश हुआ। समझा, शायद साँप कहीं चरने गया है; मगर जब मणि को लेने के लिये हाथ बढ़ाया, तो वहाँ साफ़ ज़मीन के सिवा और कोई चीज़ न दिखायी दी। बूढ़े जाट का कलेजा सन-से हो गया, और बदन के रोंगटे खड़े हो गये। एकाएक उसे अपने सामने कोई चीज़ लटकती हुई नज़र आयी। प्रेमसिंह ने तेग़ा खींच लिया और उसकी तरफ़ लपका; मगर देखा तो वह बरगद की जटा थी। अब प्रेमसिंह का ख़ौफ़ बिल्कुल दूर हो गया। उसने उस जगह को, जहाँ से रोशनी की लौ निकल रही थी, अपनी तलवार से खोदना शुरू किया। अब एक बालिश्त ज़मीन खुद गयी, तो तलवार किसी सख़्त चीज़ से टकरायी और

लौ भभक उठी। यह एक छोटा-सा तेग़ा था; मगर प्रेमसिंह के हाथ आते ही उसकी शमा-जैसी चमक ग़ायब हो गयी।

(३)

यह एक छोटा-सा तेग़ा था; मगर निहायत आबदार। उसके दस्ते में बेशकीमत जवाहरात जड़े हुये थे और दस्ते के ऊपर 'विक्रमादित्य' खुदा हुआ था। यह विक्रमादित्य का तेग़ा था। उस विक्रमादित्य का, जो भारत का आफ़ताब बनकर चमका। जिसके गुण अब भी घर-घर गाये जाते हैं। इस तेग़े ने भारत के ज़िन्दा-जावेद कालिदास की सुहबतें देखी हैं। जिस वक़्त विक्रमादित्य रातों को भेस बदलकर दर्द-दुख की कहानी अपने कानों से सुनते और ज़ोरोजबर के करिश्मे अपनी दर्द-रस आँखों से देखने के लिये निकलते थे, तो यही आबदार तेग़ा उनके पहलू की ज़ीनत हुआ करता था। जिस रहम व इंसाफ़ ने विक्रमादित्य का नाम अब तक ज़िन्दा रक्खा है, उसमें यह तेग़ा भी उनका हमदर्द और शरीक था। यह उनके साथ उस तख़्त पर जलवा-अफ़रोज़ होता था, जिस पर राजा भोज को भी बैठना नसीब न हुआ।

इस तेग़े में ग़ज़ब की चमक थी। मुद्दत दराज़ तक ज़मीन के नीचे दफ़न रहने पर भी उस पर ज़ंग का नाम न था। अँधेरे घरों में उससे उजाला हो जाता था। रात-भर दुरख़्शाँ तारे की तरह जगमगाता रहता। जिस तरह चाँद बादलों के पर्दे में छिप जाता है; मगर उसकी मद्धिम रोशनी छन-छनकर आती

है, उसी तरह ग़िलाफ़ के अन्दर से इस तेग़े की तेज़ किरणें बाहर फूटी पड़ती थीं।

मगर जब कोई शख़्स इसे हाथ में ले लेता, तो इसकी चमक ग़ायब हो जाती थी। इसका यह वस्फ़ देखकर लोग दंग रह जाते थे।

हिन्दुस्तान में उन दिनों शेरे-पंजाब की ललकार गूँज रही थी। रणजीतसिंह सख़ावत व शुजाअत और रहम व इंसाफ़ में अपने वक़्त के विक्रमादित्य थे। उस मग़रूरे काबुल का ग़रूर, जिसने सदियों तक हिन्दुस्तान को सिर नहीं उठाने दिया था, ख़ाक में मिलाकर लाहौर जाते थे। माहनगर का पुरफ़ाज़ा मैदान और दरख़्तों का दिलावेज़ जमघट देखा, तो वहीं पड़ाव डाल दिया। बाज़ार आरास्ता हो गये, ख़ेमे और शामियाने नसब कर दिये गये। जब रात हुई, तो पचीस हज़ार चूल्हों का स्याह धुआँ सारे मैदान और बाग़ीचे पर छा गया, और उस धुएँ के आसमान में चूल्हों की आग, कन्दीलें और मशालें ऐसी मालूम होती थीं, गोया अंधेरी रात मे आसमान पर तारे निकल आये हों।

( ४ )

शाही फ़िरोदगाह से गाने बजाने की पुरशोर और पुरजोश आवाज़ें आ रही थीं। सिक्ख सरदारों ने सरहदी मुक़ामात पर सदहा अफ़ग़ानी औरतें गिरफ़्तार कर ली थीं जैसा उन दिनो लड़ाइयों मे आम तौर पर हुआ करता था। वे ही औरतें उस वक़्त छायेदार दरख़्तों के नीचे क़ुदरती फ़र्श से सजी हुई महफ़िल

में अपनी बेसुरी तानें आलाप रहीं थीं; और अहले-महफ़िल जिनमें नग़मे का लुत्फ़ उठाने की इतनी ख़्वाहिश न थी, जितनी हँसने और ख़ुश होने की, ख़ूब ज़ोर-ज़ोर से कहकहे लगाकर हँस रहे थे। कहीं-कहीं मनचले सिपाहियों ने स्वाँग भरे थे। वह चन्द मशालें और सैकड़ों तमाशाइयों का हजूम साथ लिये इधर-उधर ख़ुशफेलियाँ करते-फिरते थे। सारी फ़ौज के दिलों में बैठकर फ़तह की देवी अपने जलवे दिखा रही थीं।

रात के नौ बजे होंगे कि एक आदमी काला कम्बल ओढ़े, एक बाँस का सोंटा लिये शाही ख़ेमे से बाहर निकला और बस्ती की तरफ़ आहिस्ते-आहिस्ते चला। आज माहनगर भी मुसर्रत से ऐंठ रहा है। दरवाज़ों पर कई-कई बत्तियोंवाले फ़तील-सोज़ रोशन हैं। दरवाज़ों के सहन झाड़कर साफ़ कर दिये गये हैं। दो-एक जगह शहनाइयाँ बज रही हैं और कहीं-कहीं लोग भजन गा रहे हैं। काली कम्बलवाला मुसाफ़िर इधर-उधर देखता-भालता गाँव के चौपाल में जा पहुंचा। चौपाल ख़ूब सजा हुआ था। गाँव के मुअज़्ज़िज़ बैठे हुए इस अहम मसले पर बहस कर रहे थे कि महराज रणजीतसिंह की ख़िदमत में कौन सा तोहफ़ा पेश किया जाय। आज महाराज ने इस गाँव को अपने क़दमों से रोशन किया है, तो क्या इस गाँव के बसनेवाले महाराज के क़दमों को बोसा न देंगे? ऐसे मुबारक मौक़े कहाँ आते हैं! सब लोग सिर झुकाये मुतफ़िक्र बैठे थे। किसी की अक्ल कुछ काम न करती थी। वहाँ अनमोल जवाहरात की किश्तियाँ कहाँ! कामिल घंटा-भर

तक किसी ने सिर न उठाया। एकाएक बूढ़ा प्रेमसिंह खड़ा हो गया और बोला—अगर आप लोग पसन्द करें, तो मैं विक्रमादित्य की तलवार नज़राना के लिये दे सकता हूँ।

इतना सुनते ही सब-के-सब फ़र्ते-मुसर्रत से उछल पड़े और एक हुल्लड़ सा मच गया। इतने में एक मुसाफ़िर काली कमली ओढ़े चौपाल के अन्दर आया और हाथ उठाकर बोला—भाइयो, वाह गुरु की जय!

चेतराम बोले—तुम कौन हो?

मुसाफ़िर—राही आदमी हूँ। पेशावर जाना है। रात ज़्यादा आ गयी है; इसलिये यहीं लेट रहूँगा।

टेकसिंह—हाँ-हाँ, आराम से सोओ। चारपाई की ज़रूरत हो, तो मँगवा दूँ?

मुसाफ़िर—नहीं आप तकलीफ़ न फ़रमायें। मैं इसी टाट पर लेट रहूँगा। अभी आप लोग विक्रमादित्य की तलवार की कुछ बातचीत कर रहे थे। यही सुनकर चला आया; वर्ना बाहर ही पड़ा रहता। क्या यहाँ किसी के पास विक्रमादित्य की तलवार है?

मुसाफ़िर के लब व लहज़ा से साफ़ ज़ाहिर होता था कि वह कोई शरीफ़ आदमी है। उसकी आवाज़ में वह कशिश थी, जो कानों को अपनी तरफ़ खींच लिया करती है। सबकी आँखें उसकी तरफ़ उठ गयीं। पंडित चेतराम बोले—जी हाँ, कुछ अर्सा हुआ, विक्रमादित्य का तेग़ा ज़मीन से निकला है।

मुसाफ़िर—यह क्योंकर मालूम हुआ कि यह तेग़ा उन्हीं का है ?

चेतराम—उसके दस्ते पर उनका नाम खुदा हुआ है।

मुसाफ़िर—उनकी तलवार तो बहुत बड़ी होगी ?

चेतराम—नहीं, वह तो एक छोटा सा नीमचा है।

मुसाफ़िर—तो फिर उसमें कोई ख़ास वस्फ़ होगा।

चेतराम—जी हाँ, उसके गुण अनमोल हैं। देखकर अक़्ल दंग रह जाती है। जहाँ रख दो, उसमें जलते चिराग़ की सी रोशनी पैदा हो जाती है।

मुसाफ़िर—ओफ़ओह !

चेतराम—मगर ज्यों ही कोई आदमी उसे हाथ में ले लेता है, उसकी सारी चमक-दमक ग़ायब हो जाती है।

यह अजीब बात सुनकर उस मुसाफिर की वही कैफ़ियत हो गयी, जो एक हैरत-अंगेज़ कहानी सुनने से बच्चों की हो जाया करती है। उसकी आँख और अन्दाज़ से बेसब्री ज़ाहिर होने लगी। जोश से बोला—विक्रमादित्य, तुम्हारे प्रताप को धन्य है !

ज़रा देर के बाद फिर बोला—वे कौन बुज़ुर्ग हैं जिनके पास यह अनमोल चीज़ है ?

प्रेमसिंह ने फ़ख़्रिया अन्दाज़ से कहा—मेरे पास है।

मुसाफ़िर—क्या मैं उसे देख सकता हूँ ?

प्रेमसिंह—हाँ, मैं आपको सबेरे दिखा दूँगा ;—मगर नहीं,

ठहरिये, सबेरे तो हम उसे महाराज रणजीतसिंह को भेंट करेंगे। आपका जी चाहे तो इसी वक़्त देख लीजिये।

दोनों आदमी चौपाल से चल खड़े हुये। प्रेमसिंह ने मुसाफ़िर को अपने घर में ले जाकर तेग़े के पास खड़ा कर दिया। उस कमरे में चिराग़ न था; मगर सारा कमरा रोशनी से जगमगा रहा था। मुसाफ़िर ने पुरजोश आवाज़ से कहा—विक्रमादित्य! तुम्हारे प्रताप को धन्य है! इतना ज़माना गुज़रने पर भी तुम्हारी तलवार का तेज़ कम न हुआ!

यह कहकर उसने फ़र्ते-शौक़ से हाथ बढ़ाकर तेग़े को पकड़ लिया, मगर उसका हाथ लगते ही तेग़े की चमक जाती रही और कमरे में अँधेरा छा गया।

मुसाफ़िर ने फ़ौरन् तेग़े को तख़्त पर रख दिया। उसका चेहरा अब बहुत उदास हो गया था। उसने प्रेमसिंह से कहा—क्या तुम यह तेग़ा रणजीतसिंह को भेंट दोगे? वह इसे हाथ में लेने के क़ाबिल नहीं है।

यह कहकर मुसाफ़िर तेजी से बाहर निकल आया। वृन्दा दरवाज़े पर खड़ी थी। मुसाफ़िर ने उसके चेहरे की तरफ़ एक बार ग़ौर से देखा; मगर कुछ बोला नहीं।

रात आधी से ज़्यादा गुज़र चुकी थी; मगर फ़ौज में शोर-गुल बदस्तूर जारी था। हंगामा मुसर्रत ने नींद को सिपाहियों की आँखों से दूर भगा दिया है। अगर कोई अँगड़ाई लेता, या ऊँघता नज़र आ जाता है तो अहले-मजलिस उसे एक टाँग से खड़ा

कर देते हैं। एकाएक यह ख़बर मशहूर हुई कि महाराज इसी वक़्त कूच करेंगे। लोग ताज्जुब में आ गये कि महाराज ने क्यों इस अंधेरी रात में सफ़र करने की ठानी है। इस ख़ौफ़ से कि फ़ौज को इसी वक़्त कूच करना पड़ेगा, चारों तरफ़ खलबली सी मच गयी। वह ख़ुद चन्द आज़मूदागर सरदारों के साथ रवाना हो गये। इसका सबब किसी की समझ में न आया।

जिस तरह बाँध टूट जाने से तालाब का पानी क़ाबू से बाहर होकर ज़ोर-शोर के साथ बह निकलता है, इसी तरह महाराज के जाते ही फ़ौज के अफ़सर और सिपाही खरमस्तियाँ करने लगे।

( ५ )

वृन्दा को बेवा हुये तीन साल गुज़रे हैं। इसका शौहर एक बेफ़िक्र और रंगीनमिज़ाज आदमी था। गाने-बाजाने का उसे इश्क़ था। घर की जो कुछ जमा-जत्था थी, वह सरस्वती और उसके पुजारियों को भेंट कर दी। तीन लाख की ज़ायदाद तीन साल के लिये भी काफ़ी न हो सकी; मगर उसका मुद्दआ पूरा हो गया। सरस्वती देवी ने उसे दुआ दी। फ़ने-नग़मा में उसने ऐसा कमाल पैदा किया कि अच्छे-अच्छे गुणी उस्ताद उसके सामने ज़बान खोलते डरते थे। गाने का उसे जिस क़द्र शौक़ था, उतनी ही मुहब्बत उसे वृन्दा से थी। उसकी जान गाने में बसती थी तो दिल वृन्दा की मुहब्बत से लबरेज़ था। पहले मज़ाकन् और फिर तफ़रीहन् उसने वृन्दा को कुछ गाना सिखलाया। यहाँ तक कि उसको भी उस आबे-हयात की लज़्ज़त मिल गयी,

और अगर्चे उसके शौहर को मरे तीन साल गुज़र गये हैं और उसने दुनियाँ के लुत्फ़ को ख़ैरबाद कह दिया है। यहाँ तक कि किसी ने उसके गुलाब के से होठों पर मुस्कराहट की झलक नहीं देखी; मगर गाने की तरफ़ अभी तक उसकी तबीयत मायल थी। उसकी तबीयत जब कभी अय्याम रफ़्ता की याद से उदास होती है, तो वह कुछ गाकर जी बहला लेती है; लेकिन गाने से उसका मक़सूद पूरा नहीं होता; बल्कि जब वह कोई दिलकश राग आलापने लगती है, तो ख़याल मे अपने शौहर को ख़ुशी से मुस्कराते हुये देखती है। वही ख़याली तस्वीर उसे दाद देती हुई नज़र आती है। गाने से उसका मुद्दआ अपने जन्नतनसीब शौहर की याद को ताज़ा करता है। गाना उसके नज़दीक पातिव्रत-धर्म का निबाह है।

तीन पहर रात जा चुकी है। आसमान पर चाँद की रोशनी मन्द हो चुकी है। चारों तरफ़ गहरा सन्नाटा छाया हुआ है, और उस ख़याल-अफ़ज़ा सन्नाटे मे वृन्दा ज़मीन पर बैठी हुई मद्धिम स्वरों में गा रही है—

"बता दे कोई प्रेम-नगर की डगर।"

वृन्दा की आवाज़ मे लोच भी है और दर्द भी। इसमें बेचैन दिल को तसकीन देनेवाली क़ुवत भी है और सोये हुये जज़्बात को जगा देने की ताक़त भी। उसकी तान कानों को छेदती हुई जिगर में जा पहुँचती है—

"बता दे कोई प्रेम-नगर की डगर।
मैं बौरी पग-पग पर भटकूँ, काहू की कछु नाहीं ख़बर॥
बता दे कोई प्रेम-नगर की डगर।"

एकाएक किसी ने दरवाज़ा खटखटाया और कई आदमी पुकारने लगे- "किसका मकान है? दरवाज़ा खोलो।" वृन्दा चुप हो गयी। प्रेमसिंह ने उठकर दरवाज़ा खोल दिया। दरवाज़े की सहन मे सिपाहियों का एक हजूम था। दरवाज़ा खुलते ही कई सिपाही दहलीज़ में घुस आये और बोले—तुम्हारे घर में कोई गायन रहती है? हम उसका गाना सुनेंगे।

प्रेमसिंह ने कड़ी आवाज़ मे कहा—हमारे यहाँ कोई गायन नहीं है!

इस पर कई सिपाहियों ने प्रेमसिंह को पकड़ लिया और बोले—तेरे घर से गाने की आवाज़ आती थी!

एक सिपाही—बतलाता क्यों नहीं रे, कौन गा रहा था?

प्रेमसिंह—मेरी लड़की गा रही थी; मगर वह गायन नहीं है।

सिपाही—कोई हो, हम तो आज गाना सुनेंगे।

गुस्से से प्रेमसिंह काँपने लगा। होंठ चबाकर बोला—यारो, हमने भी अपनी ज़िन्दगी फ़ौज ही में काटी है; मगर कभी..

उस हंगामे मे प्रेमसिंह की बात किसी ने न सुनी। एक नौजवान जाट ने, जिसकी आँखें नशे से सुर्ख़ हो रही थीं, ललकार-कर कहा—इस बुड्ढे की मूँछें उखाड़ लो।

वृन्दा आँगन मे पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ी यह कैफ़ियत

देख रही थी। जब उसने दो सिपाहियों को प्रेमसिंह की मूँछ पकड़कर खींचते देखा, उससे न रहा गया। वह बेख़ौफ सिपाहियों के बीच में घुस आयी और बुलन्द आवाज़ में बोली—कौन मेरा गाना सुनना चाहता है ?

सिपाहियों ने उसे देखते ही प्रेमसिंह को छोड़ दिया और बोले—हम सब तेरा गाना सुनेंगे।

वृन्दा—अच्छा, बैठ जाओ। मैं गाती हूँ।

इस पर कई सिपाहियों ने ज़िद की कि इसे पड़ाव पर ले चलो वहाँ ख़ूब रंग जमेगा।

वृन्दा सिपाहियों के साथ पड़ाव की तरफ़ चली तो प्रेमसिंह ने कहा—वृन्दा, इनके साथ जाती हो तो फिर इस घर में क़दम न रखना।

वृन्दा जब पड़ाव पर पहुँची, तो वहाँ ख़रमस्तियों की एक तूफ़ान बर्पा था। फ़तह की देवी ग़नीम को पामाल करके अब फ़ातिहों की इंसानियत और शराफ़त को पाँव से कुचल रही थी। हैवानियत का ख़ूँख़्वार शेर ग़नीम के ख़ून से आसूदा न होकर अब इंसानी जज़्बात का ख़ून चूस रहा था। वृन्दा को लोग एक सजे हुये खेमे में ले गये। यहाँ फ़र्शी-ग्लास रोशन थे और शराब के दौर चल रहे थे। वृन्दा उस ख़रगोश के बच्चे की तरह जो ख़ूख़्वार दरिन्दों के पंजे में फँस जाता है, फ़र्श के एक गोशे पर सहमी हुई बैठी थी। नफ़सानियत का भूत जो उस वक़्त दिलों में अपनी शैतानी फ़ौज आरास्ता किये बैठा था, कभी आँखों की कमान से

तेज़ अबरूरेज़ तीर चलाता और कभी मुँह की कमान से ज़िगरदोज़ तीरों की बौछार करता। ज़हरीली शराब में बुझे हुये ये तीर वृन्दा के नाज़ुक और पाकीज़ह दिल को छेदते हुये पार हो जाते थे। वह सोच रही थी -"ऐ द्रौपदी की लाज रखनेवाले कृष्ण भगवान्! तुमने धर्म के बन्धन से बंधे हुये पांडवों के होते हुये द्रौपदी की लाज रक्खी थी। मैं तो दुनियाँ में बिलकुल बेकस हूँ। क्या मेरी लाज न रक्खोगे?" यह सोचते हुये उसने मीरा का यह मशहूर भजन गाया—

"सिया-रघुवीर भरोसो ऐसो।"

वृन्दा ने यह गीत बड़े दिलकश अन्दाज़ से गाया। उसके मीठे सुरों में मीरा का अन्दाज़ पैदा हो गया था। ज़ाहिरी हैसियत से वह शराब से मतवाले सिपाहियों के रूबरू गा रही थी; मगर आलमे-ख़याल में वह मुरलीवाले श्याम के रूबरू हाथ बाँधे खड़ी उससे इल्तजा कर रही थी।

ज़रा देर के लिये उस पुरशोर महल में सन्नाटा छा गया। इंसान के दिल में बैठे हुये हैवान पर प्रेम की यह दिलसोज़ सदा अपना जादू चला गयी। नग़मा लतीफ़ फील-मस्त को भी राम कर लेता है। पूरा घंटा भर तक वृन्दा ने सिपाहियों को बे-हस व हरकत रक्खा। एकाएक घड़ियाल ने पाँच बजाये। सिपाही और सरदार सब चौंक पड़े। सब का नशा हिरन हो गया। चालीस मील की मंजिल तय करनी है। फ़ुर्ती के साथ रवानगी की तैयारियाँ होने लगीं। ख़ेमे उखड़ने लगे। सवारों ने घोड़ों

को दाना खिलाना शुरू किया। एक भागड़-सी मच गयी। उधर आफ़ताब निकला, इधर फ़ौज ने नक़ारा कूच बजा दिया। शाम को इस मैदान का एक-एक गोशा आबाद था। सुबह को वहाँ कुछ भी न था। सिर्फ टूटे-फूटे खड़े चूल्हों की राख, और खेमों की मेख़ों के निशान बाकी थे।

वृन्दा ने जब अहले-महफ़िल को रवानगी की तैयारियों में मसरूफ़ देखा, तो वह खेमे से बाहर निकल आयी। कोई मुज़ाहिम न हुआ ; मगर उसका दिल धड़क रहा था, कि कहीं कोई जाकर फिर न पकड़ ले। जब वह दरख़्तों के झुरमुट से बाहर पहुंची, तो उसकी जान मे जान आयी। बड़ा सुहावना मौसम था। वृन्दा ने आगे क़दम बढ़ाना चाहा ; मगर उसके पाँव न उठे। प्रेमसिंह की यह बात कि—सिपाहियों के साथ जाती हो तो फिर इस घर मे क़दम न रखना—उसे याद आ गयी। उसने एक लम्बी साँस ली और ज़मीन पर बैठ गयी। दुनियाँ मे अब उसके लिये कोई ठिकाना न था।

उस बेकस चिड़िया की हालत कैसी दर्दनाक है, जो दिल में शौके-परवाज़ लिये हुये बन्दे-सैयाद से निकल आती है ; मगर आज़ाद होकर उसे मालूम होता है कि बेरहम सैयाद ने उसके परों को काट दिया है। वह दरख़्तों की डालियों की तरफ़ बार-बार हसरतनाक निगाहों से देखती है ; मगर परे-परवाज़ नहीं खोल सकती, और एक बेबसी के आलम मे सोचने लगती है कि काश!

सैयाद मुझे फिर अपने कफ़स मे क़ैद कर लेता। वृन्दा की हालत भी उस वक़्त ऐसी ही दर्दनाक थी।

वृन्दा कुछ देर तक ख़याल में डूबी बैठी रही। फिर वह उठी और आहिस्ता-आहिस्ता प्रेमसिंह के दरवाज़े पर आयी। दरवाज़ा खुला हुआ था; मगर वह अन्दर क़दम न रख सकी। उसने दरो-दीवार को आरज़ूमन्द निगाहों से देखा और फिर जंगल की तरफ़ चली गयी।

( ६ )

शहर लाहौर के एक मुमताज़ हिस्से में एक ख़ुशक़िता साफ़-सुथरा सहमंज़िला मकान है। सरसब्ज़ और ख़ुशनुमा फूलोंवाली माधवी ने उसकी दीवारों और मिहराबों को ख़ूब सजा दिया है। इसी मकान मे एक अमीराना अन्दाज़ से सजे हुए कमरे के अन्दर वृन्दा एक मख़मली क़ालीन पर बैठी हुई, अपनी ख़ुशरंग और ख़ुशनवा मैना को पढ़ा रही है। कमरे की दीवारों पर हल्के सब्ज़ रंग की क़लई है, ख़ुशनुमा दीवारगीरियाँ, ख़ूबसूरत तसवीरें मुनासिब मौक़ों पर ज़ेबा दे रही हैं। सन्दल और ख़स की जाँफ़ज़ा ख़ुशबू कमरे में फैली हुई है। एक बूढ़ी औरत बैठी हुई पंखा झल रही है; मगर इस तकल्लुफ़ और सामाने-ऐश के बावजूद वृन्दा का चेहरा उदास है। उसका चेहरा अब और भी ज़र्द नज़र आता है। मौलसिरी का फूल मुरझा गया है।

वृन्दा अब लाहौर की मशहूर गानेवालियों में है। उसे इस शहर में आये तीन महीने से ज़्यादा नहीं गुज़रे; मगर इतने ही

दिन में उसने आम शोहरत हासिल कर ली है। यहाँ उसका नाम श्यामा मशहूर है। इतने बड़े शहर में, जिससे श्यामा बाई का पता पूछो, वह यक़ीनन् बता देगा। श्यामा की आवाज़ और अन्दाज़ में कोई मोहिनी है जिसने शहर में हर ख़ास व आम को अपना शैदाई बना रक्खा है। लाहौर मे बाकमाल गानेवालियों की कमी नहीं है। लाहौर उस ज़माने में हर फ़न और कमाल का मरकज़ था; मगर कोयलें और बुलबुलें बहुत थीं, श्यामा सिर्फ़ एक थी। वह 'ध्रुपद' ज़्यादा गाती थी इसलिए लोग उसे ध्रुपदी श्यामा कहते थे।

लाहौर में मियाँ तानसेन के ख़ानदान के कई अहले-कमाल हैं, जो राग और रागिनियों में बातें करते हैं। वे श्यामा का गाना पसन्द नहीं करते। वे कहते हैं कि श्यामा का गाना अकसर ग़लत होता है। उसे राग और रागिनियों की तमीज़ नहीं; मगर उनकी हरफ़नगीरियों का किसी पर कुछ असर नहीं होता। श्यामा ग़लत गाये या सही गाये, वह जो कुछ गाती है, लोग उसे सुनकर मस्त हो जाते हैं। इसका राज़ यह है कि श्यामा हमेशा दिल से गाती है, और जिन जज़्बातों का वह इज़हार करती है, उन्हें ख़ुद भी महसूस करती है। वह कठपुतलियों की तरह तुली हुई अदाओं की नक़ल नहीं करती। अब उसके बग़ैर महफ़िलें सूनी रहती हैं। हर महफ़िल में उसका मौजूद होना लाज़िमी हो गया है। वह चाहे श्लोक ही गाये; मगर उसके बग़ैर शौक़ का सामान पूरा नहीं होता। तलवार की बाढ़ की

तरह वह महफ़िलों की जान है। उसने आवाम के दिलों में यहाँ तक घर कर लिया है कि जब वह अपनी पालकी पर हवा खाने निकलती है, तो उस पर चारों तरफ़ से फूलों की बौछार होने लगती है।

महाराज रणजीतसिंह को काबुल से लौटे हुये तीन महीने गुज़र गये; मगर अभी तक फ़तह की ख़ुशी में कोई जलसा नहीं हुआ। वापसी के बाद कई दिनों तक तो महाराज किसी वजह से उदास थे; बाद अज़ाँ उनके मिज़ाज में एकाएक एक तग़य्युर वाक़ा हुआ। उन्हें फ़तहे-काबुल के ज़िक्र से नफ़रत-सी हो गयी। जो कोई उन्हें उस फ़तह पर मुबारकबाद देने जाता, उसकी तरफ़ से मुँह फेर लेते थे। वह रूहानी मुसर्रत जो मौज़ा माहनगर तक उनके चेहरे से झलकती थी, अब वहाँ न थी। काबुल की फ़तह उनकी ज़िन्दगी की सबसे बड़ी आरज़ू थी। वह मुहिम जो एक हज़ार साल तक हिन्दू राजाओं के इमकान ख़याल से भी दूर थी, उनके हाथों सर हुई। जिस मुल्क ने हिन्दुस्तान को एक हज़ार बरस तक ज़ेर-नगीन रक्खा, वहाँ हिन्दू क़ौम का फरहरा रणजीत सिंह ने उड़ाया। ग़ज़नी और काबुल की पहाड़ियाँ इन्सानी ख़ून से लाल हो गयीं, मगर रणजीतसिंह ख़ुश नहीं हैं। उनके मिज़ाज की कायापलट का राज़ किसी की समझ में नहीं आता। अगर कुछ समझती है, तो वृन्दा समझती है।

तीन महीने तक महाराज की यही कैफ़ियत रही। बाद अज़ा उनका मिज़ाज अपने असली रंग पर आने लगा। हवाख़्वाहान

दरबार उस मौक़े के मुन्तज़िर थे। एक रोज़ उन्होंने महाराज से एक शानदार जलसा करने की इस्तदुआ की। पहले तो वे बरहम हुये; मगर बिलाख़िर मिज़ाजशिनासों की घातें अपना काम कर गयीं।

जलसे की तैयारियाँ वसीअ पैमाने पर की जाने लगीं। शाही रक़्सगाह की सजावट होने लगी। पटना, बनारस, लखनऊ, ग्वालियर, दिल्ली और पूना की नामवर तवायफ़ों को पैग़ाम दिये गये। वृन्दा को भी दावत मिली। आज एक मुद्दत के बाद उसके चेहरे पर मुस्कुराहट की झलक दिखायी दी।

जलसे की तारीख़ मुक़र्रर हो गयी। लाहौर की गुज़रगाहों पर ख़ुशरंग झंडियाँ लहराने लगीं। चारों तरफ़ से नवाब और राजे शाहाना सज-धज के साथ आने लगे। फ़र्राशों ने नाच-घर को ऐसा आरास्ता किया था कि उसे देखकर गुमान होता था कि इशरत का आरामगाह है।

शाम के वक़्त दरबार-शाही आरास्ता हुआ। महाराजा साहब तख़्ते-ज़रनिगार पर जलवा-अफ़रोज हुये। नवाब और राजे, उमराव-रऊसा, हाथी-घोड़ों पर सवार, अपनी सज-धज दिखाते हुये एक जलूस बनाकर महाराज की क़दमबोसी को चले। सड़क पर दो-रूया तमाशाइयों का हजूम था। ख़ुशी को रंगों से भी कोई गहरा ताल्लुक़ है; जिधर नज़र उठती थी, रंगों की कैफ़ियत दिखायी देती थी। ऐसा मालूम होता था, कि कोई उमड़ी हुई नदी खुशरंग फूलों की क्यारियों से बहती चली आती है।

मुसर्रत के जोश में कभी-कभी लोग तहज़ीब से गिरी हुई हरकतें भी कर बैठते थे। एक पंडितजी मिरज़ई पहने, सिर पर गोल टोपी रक्खे, तमाशा देखने में मसरूफ़ थे। किसी शरीर आदमी ने उनकी तोंद पर एक चमगीदड़ चिमटा दी। पंडितजी बेतहाशा तोंद मटकाते हुये भागे। बड़ा क़हक़हा पड़ा। एक और मौलवी साहब नीची अचकन पहने एक दुकान पर खड़े थे। दुकानदार ने कहा—"मौलवी साहब, आपको खड़े-खड़े तकलीफ़ होती है, यह कुर्सी रक्खी हुई है, बैठ जाइये।" मौलवी साहब ख़ुश हुये। सोचने लगे कि शायद मेरे बशरे से रुआब झलक रहा है; वर्ना दुकानदार कुर्सी क्यों देता! दुकानदार ग़ज़ब के मर्दुमशनास होते हैं। हज़ारों आदमी खड़े हैं। मगर उसने किसी से बैठने की इस्तदुआ न की। मुस्कराते हुये कुर्सी पर बैठे; मगर बैठते ही पीछे की तरफ़ लुढ़के और नीचे बहती हुई नाली में गिर पड़े। सारे कपड़े लथपथ हो गये। दुकानदार को हज़ारों बेनुक्त सुनायीं। बड़ा क़हक़हा पड़ा। कुर्सी तीन ही टाँगों की थी।

एक जगह कोई अफ़यूनी साहब तमाशा देखने आये हुये थे। झुकी हुई कमर, पोपला मुँह, सिर की छितरी ज़ुल्फ़ें, और दाढ़ी के बाल मेहँदी से रँगे हुये थे। आँखों में सुर्मा भी था। आप बड़े ग़ौर से मसरूफ़-सैर थे। इतने में एक हलवाई सिर पर खोंचा रक्खे हुये आया और बोला—"ख़ाँ साहब, जुमेरात की गुलाबवाली रेवड़ियाँ हैं। आज पैसे की आध पाव लगा दीं। खा लीजिये, वर्ना पछताइयेगा।" अफ़यूनी साहब ने जेब में हाथ डाला;

मगर पैसे न थे। कफ़े-अफ़सोस मलकर रह गये। मुँह में पानी भर आया। गुलाबवाली रेवड़ियाँ और पैसे में आध पाव! न हुये पैसे, नहीं तो सेरों तुला लेते। हलवाई ताड़ गया। बोला—"आप पैसों की कुछ फ़िक्र न करें। पैसे फिर मिल जायेंगे। आप कोई ग़ैरमातबर आदमी थोड़े ही हैं!" अफ़यूनी साहब की बाछें खिल गयीं। रूह फड़क उठी। आपने पाव भर रेवड़ियाँ लीं, और जी में कहा—"अब पैसा देनेवाले पर लानत है। घर से निकलूँगा ही नहीं, तो पैसे क्या लोगे!" रूमाल में रेवड़ियाँ लीं। दिले-आशिक़ में सब्र कहाँ! मगर ज्यों ही पहली रेवड़ी ज़बान पर रक्खी, तिलमिला गये। पागल कुत्ते की तरह पानी की तलाश में इधर-उधर दौड़ने लगे। आँख और नाक से पानी बहने लगा। आधा मुँह खोलकर ठंडी हवा से ज़बान की जलन बुझाने लगे। जब होश बजा हुये तो हलवाई को हज़ारों सलवातें सुनायीं। इस पर भी लोग ख़ूब हँसे। ख़ुशी के मौक़ों पर ऐसी बेज़रर शरारतें अकसर हुआ करती हैं और उन्हें लोग माफ़ी के क़ाबिल समझते हैं; क्योंकि वे खौलती हुई हाँड़ी के उबाल हैं।

रात के नौ बजे सरौदगाह में जमघट हुआ। सारा क़सर नीचे से ऊपर तक ख़ुशरंग हाँड़ियों और फानूसों से जगमगा रहा था। अन्दर झाड़ों की बहार थी। एक बाकमाल कारीगर ने रंगशाला के बीचोंबीच फ़ज़ा में मुअल्लिक थमा हुआ एक फौवारा लगाया था जिसके सुराखों से ख़स और केवड़ा, गुलाब और सन्दल का अर्क हल्की फौवारों में बरस रहा था। महफ़िल में

अनवरवेज़ तरावत फैली हुई थी। .ख़ुशी अपनी सखी-सहेलियों के साथ .ख़ुशियाँ मना रही थीं।

दस बजे महाराज रणजीतसिंह तशरीफ़ लाये। उनके बदन पर तनजेब का एक सफ़ेद अचकन और सिर पर तिर्छी पगड़ी बंधी हुई थी। चन्द नामवर शोरा ने महाराज की शान में इसी मौक़े के लिये कसीदे कहे। महाराज ने गाना शुरू करने का हुक्म दिया। तबले पर थाप पड़ी, साज़िन्दों ने सुर मिलाया। नींद से झपकती हुई आँखें खुल गयीं और गाना शुरू हो गया।

(७)

उस शाही महफ़िल में रातभर नग़मे-लतीफ़ की बारिश होती रही। पीलू और पर्च, देस और बिहाग के तुर्बनाक झोंके चलते रहे। तवायफ़ों ने बारी-बारी से अपना जौहरे-कमाल दिखाया। किसी की पुरनाज़ अदायें दिलों में खुब गयीं। किसी का थिरकना कत्ल-आम कर गया। किसी की रसीली तानों पर वाह-वाह मच गयी। ऐसी तबीयतें बहुत कम थीं जिन्होंने .ख़ुलूस के साथ गाने का पाकीज़ह लुत्फ़ उठाया हो।

चार बजे होंगे, जब श्यामा की बारी आयी तो हाज़िरीन सँभल बैठे। फ़र्ते-शौक़ से लोग आगे खिसकने लगे। ख़ुमार से भरी हुई आँखें चौंक पड़ीं। वृन्दा महफ़िल में आयी और सिर झुकाकर खड़ी हो गयी। उसे देखकर लोग हैरत में आ गये। उसके जिस्म पर न आबदार गहने थे, न .ख़ुशरंग भड़कीली पेशवाज़। वह सिर्फ़ गेरुये रंग की साड़ी पहने हुये थी। जिस

तरह वर्क़े-गुलाब पर डूबते हुये आफ़ताब की सुनहली किरण चमकती है उसी तरह उसके गुलाबी होंठों पर मुस्कुराहट झलकती थी। उसका तकल्लुफ़ से पाक हुस्न अपनी क़ुदरती आराइश की शान दिखा रहा था। असली हुस्न दिखावे का मुहताज नहीं होता। नज़्जारहे-फ़ितरत से रूह को जो ख़त और सरूर हासिल होता है, वह पुरतकल्लुफ़ बागीचों की सैर से मुमकिन नहीं। वृन्दा ने गाया—

"सब दिन नाहिं बराबर जात!"

यह गीत इससे पहले भी लोगों ने सुना था; मगर इस वक़्त का सा असर कभी दिलों पर नहीं हुआ था। किसी के सब दिन बराबर नहीं जाते—यह कहावत रोज़ सुनते थे। आज उसके माने समझ में आये। किसी रईस को वह दिन याद आया, जब वह ख़ुद एक ताज़दार था, आज वह एक इताअतगुज़ार है। किसी को अपने बचपन का आग़ोशे-नाज़ याद आया। किसी को वह ज़माना याद आया जब वह ज़िन्दगी के दिल-फ़रेब ख़्वाब देख रहा था; मगर अफ़सोस, अब वह ख़्वाब परेशाँ हो गया। वृन्दा भी गुज़रे हुए दिनों की याद करने लगी। एक दिन वह था कि उसके दरवाज़े पर अताइयों और गानेवालों का हुजूम रहता था, और दिल में ख़ुशियों का! और आज? आह! आज! इसके आगे वृन्दा कुछ न सोच सकी। दोनों हालतों का मुक़ाबिला निहायत दिल-शिकन, निहायत यास-अंगेज़ था। उसकी आवाज़ भारी हो गयी और रिक़्क़त से गला बैठ गया।

महाराजा रणजीतसिंह श्यामा के तर्ज़ व अन्दाज़ को ग़ौर से देख रहे थे। उनकी तेज़ निगाहें उसके दिल में पहुँचने की कोशिश कर रही थीं। लोग मुतहैयर थे कि क्यों इनकी ज़बान से तारीफ़ और क़द्रदानी का एक कलमा भी न निकला। वे ख़ुश न थे, ग़मगीन भी न थे। वे ख़्याल में डूबे हुए थे। क़याफ़ा उन्हें बता रहा था कि यह औरत हरगिज़ अदाफ़रोश नहीं है। एकाएक वह उठ खड़े हुए और बोले—श्यामा, जुमेरात को मैं फिर तुम्हारा गाना सुनूँगा।

(८)

वृन्दा के चले जाने के बाद उसका गुलेज़ार बच्चा राजा उठा और आँखें मलता हुआ बोला—"अम्माँ कहाँ है?" प्रेमसिंह ने उसे गोद में लेकर कहा अम्माँ मिठाई लेने गयी है।

राजा ख़ुश हो गया। बाहर जाकर लड़कों के साथ खेलने लगा; मगर कुछ देर के बाद फिर बोला—"अम्माँ, मिठाई!" प्रेमसिंह ने मिठाई लाकर दी, मगर राजा रो-रोकर कहता रहा—"अम्माँ मिठाई!" वह शायद समझता था कि अम्माँ की मिठाई इस मिठाई से ज़्यादा मीठी होगी।

आख़िर प्रेमसिंह ने उसे कन्धे पर चढ़ा लिया और दोपहर तक खेतों में घूमता रहा। राजा कुछ देर तक चुप रहता और फिर चौंककर पूछने लगता—अम्माँ कहाँ?

बूढ़े सिपाही के पास इस सवाल का कोई जवाब न था। वह बच्चे के पास से एक दम को भी कहीं न जाता, और उसे

बातों में लगाये रहता कि कहीं वह फिर न पूछ बैठे—अम्माँ कहाँ है! बच्चों का हाफ़िज़ा कमज़ोर होता है। राजा कई दिनों तक बेक़रार रहा। आख़िर रफ़्ता-रफ़्ता माँ की याद उसके दिल से मिट गयी।

इस तरह तीन महीने गुज़र गये। एक रोज़ शाम के वक़्त राजा अपने दरवाज़े पर खेल रहा था कि वृन्दा आती हुई दिखायी दी। राजा ने उसकी तरफ़ देखा, ज़रा झिझका, फिर दौड़कर उसकी टाँगों से लिपट गया और बोला—अम्माँ आयी! अम्माँ आयी!

वृन्दा की आँखों से आँसू जारी गये। उसने राजा को गोद में उठा लिया और कलेजे से लगाकर बोली—बेटा, अभी मैं नहीं आयी। फिर कभी आऊँगी।

राजा इसका मतलब न समझा, वह उसका हाथ पकड़कर खींचता हुआ घर की तरफ़ चला। ममता की कशिश वृन्दा को दरवाज़े तक ले गयी; मगर चौखट से आगे न ले जा सकी। राजा ने बहुत खींचा; मगर वह आगे न बढ़ी। तब राजा की बड़ी-बड़ी आँखें आबगूँ हो गयीं। उसके होंठ फैल गये और वह रोने लगा।

प्रेमसिंह उसका रोना सुनकर बाहर निकल आया। देखा तो वृन्दा खड़ी है। चौंककर बोला—"वृन्दा!" मगर वृन्दा कुछ जवाब न दे सकी।

प्रेमसिंह ने फिर कहा—बाहर क्यों खड़ी हो ? अन्दर आओ। अब तक कहाँ थी ?

वृन्दा ने आँसू पोंछते हुए जवाब दिया—मैं अन्दर न आऊँगी

प्रेमसिंह—आओ, आओ। अपने बूढ़े बाप की बातों का बुरा न मानो।

वृन्दा—नहीं दादा ! मैं अन्दर क़दम नहीं रख सकती।

प्रेमसिंह—क्यों ?

वृन्दा—फिर कभी बतलाऊँगी। मैं तुम्हारे पास वह तेग़ा लेने आयी हूँ।

प्रेमसिंह ने हैरत में आकर पूछा—उसे लेकर क्या करोगी ?

वृन्दा—अपनी बेइज़्ज़ती का बदला लूँगी।

प्रेमसिंह—किससे ?

वृन्दा—रणजीतसिंह से !

प्रेमसिंह ज़मीन पर बैठ गया और वृन्दा की बातों पर ग़ौर करने लगा। फिर बोला—वृन्दा, तुम्हें मौक़ा क्योंकर मिलेगा ?

वृन्दा—कभी-कभी ख़ाक के साथ उड़कर चिउँटी आसमान तक जा पहुँचती है।

प्रेमसिंह—मगर बकरी शेर से क्योंकर लड़ेगी ?

वृन्दा—इसी तेग़े की मदद से !

प्रेमसिंह—इस तेग़े ने कभी छिपकर ख़ून नहीं किया !

वृन्दा—दादा, यह विक्रमादित्य का तेग़ा है। इसने हमेशा दुखियारों की मदद की है।

प्रेमसिंह ने तेग़ा लाकर वृन्दा के हाथ में रख दिया। वृन्दा उसे पहलू में छिपाकर जिस तरफ़ से आयी थी, उसी तरफ़ चली गयी। सूरज डूब गया था। मग़रिब के आसमान में रोशनी का कुछ-कुछ निशान बाक़ी था, और भैंसें अपने बछड़ों को देखने के लिये चरागाह से दौड़ती, पुरशौक़ आवाज़ से मिमियाती चली आती थीं, और वृन्दा अपने बच्चे को रोता छोड़कर शाम के तारीक मे ख़ौफ़नाक जंगल की तरफ़ जा रही थी।

( ९ )

जुमेरात का दिन है। रात के दस बज चुके हैं। महाराज रणजीतसिंह अपनी इशरतगाह में रौनक़-अफ़रोज हैं। एक सात बत्तियोंवाला झाड़ रोशन है। महाराजा साहब के सामने वृन्दा गेरुये रंग की साड़ी पहने हुये बैठी है। उसके हाथ मे एक बीन है। उसी पर वह एक दिलावेज़ नग़मा आलाप रही है।

महाराज बोले—श्यामा, मैं तुम्हारा गाना सुनकर बहुत ख़ुश हूँ। तुम्हें क्या इनाम दूँ?

श्यामा ने एक अन्दाज़ से सिर झुकाकर कहा—हुजूर के अख़्तयार में सब कुछ है।

रणजीतसिंह—जागीर लोगी?

श्यामा—ऐसी चीज़ दीजिये, जिससे आपका नाम हो जाय।

महाराज ने वृन्दा की तरफ़ ग़ौर से देखा, उसकी सादगी कह रही थी, कि वह माल व ज़र को कुछ नहीं समझती। उसकी

निगाह की पाकीज़गी और अन्दाज़ की मतानत साफ़ बता रही थी कि वह नाज़फ़रोश नहीं है। फिर पूछा—कोहनूर लोगी?

श्यामा—वह हुजूर के ताज में ज़्यादा ज़ेबा देता है।

महाराज मुतहैयर होकर बोले—तुम ख़ुद माँगो।

श्यामा—मिलेगा?

रणजीतसिंह—हाँ

श्यामा—मुझे ख़ूने-इंसाफ़ अता हो!

महाराज रणजीतसिंह चौंक पड़े। वृन्दा की तरफ़ फिर ग़ौर से देखा और सोचने लगे—इसका क्या मतलब है? इंसाफ तो ख़ून का प्यासा नहीं होता। यह औरत ज़रूर किसी ज़ालिम रईस या राजा की सतायी हुई है। क्या अजब है कि इसका शौहर कहीं का राजा हो? ज़रूर ऐसा ही है। उसे किसी ने क़त्ल कर दिया है। इन्साफ़ को ख़ून की प्यास इसी हालत में होती है। इसी वक़्त इन्साफ़ ख़ूँख़्वार जानवर हो जाता है। मैंने वादा किया है कि वह जो कुछ माँगेगी, वह दूँगा। उसने एक बेश-क़ीमत चीज़ माँगी है। ख़ूने-इंसाफ! वह उसे मिलना चाहिये। मगर किसका ख़ून?

राजा ने फिर पहलू बदलकर सोचा, किसका ख़ून? यह सवाल मेरे दिल में न पैदा होना चाहिये। इन्साफ़ जिसका ख़ून माँगे, उसका ख़ून मुझे देना चाहिये। इन्साफ़ के नज़दीक सबका ख़ून बराबर है; मगर इन्साफ़ ख़ून का मुस्तहक़ है? इसका फ़ैसला कौन करेगा? कीने के बुख़ार से भरे हुये इन्सान के हाथ में इसका फ़ैसला नहीं रहना चाहिये। ताना अकसर एक कड़ी बात है।

एक दिल जला देनेवाला ताना इन्सान के दिल मे .ख़ून की प्यास पैदा कर देता है। उस ताना दिलसोज़ की आग उस वक़्त तक नहीं बुझती जब तक उस पर .ख़ून के छींटे न दिये जायँ। मैंने ज़बान दे दी है। ग़लती हुई। पूरी रूयेदाद सुने बग़ैर मैं हरगिज़ इस अम्र का मजाज़ नहीं कि .ख़ूने-इन्साफ़ का वादा करूँ। इन ख़्यालात ने राजा को कई मिनट तक मह्व रक्खा। आख़िर वे बोले— श्यामा! तुम कौन हो?

वृन्दा—एक बेकस औरत।

राजा—तुम्हारा घर कहाँ है?

वृन्दा—माहनगर मे।

रणजीतसिंह ने वृन्दा को फिर ग़ौर से देखा। कई महीने पहले रात के वक़्त माहनगर में एक भोली-भाली औरत की जो तसवीर दिल मे खिंची हुई थी, वह इस औरत से बहुत कुछ मिलती थी। उस वक़्त निगाहें इतनी बेबाक न थीं। उस वक़्त आँखों में शर्म की आब थी, अब शोख़ी की झलक है। तब सच्चा मोती था, अब झूठा हो गया है।

महाराज बोले—श्यामा, इन्साफ़ किसका .ख़ून चाहता है?

वृन्दा—जिसे आप क़सूरवार ठहरायें। जिस दिन हज़ूर ने रात को माहनगर में पड़ाव किया था, उसी रात को आपके सिपाही मुझे बज़ोर खींचकर पड़ाव पर लाये और मुझे इस क़ाबिल नहीं रक्खा कि लौटकर अपने घर जा सकूँ। मुझे उनकी नापाक निगाहों का निशाना बनना पड़ा। उनकी बेबाक ज़बानों ने, उनके

शर्मनाक इशारों ने मेरी इज़्ज़त ख़ाक में मिला दी। आप वहाँ मौजूद थे, और आपकी बेकस रैयत पर यह ज़ुल्म किया जा रहा था। कौन मुजरिम है? इन्साफ़ किसका ख़ून चाहता है? इसका फ़ैसला आप करें।

रणजीतसिंह ज़मीन पर आँखें गाड़े सुनते रहे। वृन्दा ने ज़रा दम लेकर फिर कहना शुरू किया—मैं बेवा औरत हूँ। मेरी इज़्ज़त के पासवाँ, मेरी आबरू के मुहाफ़िज़ आप हैं। पति वियोग के साढ़े तीन साल मैंने तपस्विनी बनकर काटे थे; मगर आपके आदमियों ने मेरी तपस्या ख़ाक मे मिला दी। मैं इस क़ाबिल नहीं कि लौटकर अपने घर जा सकूँ। अपने बच्चे के लिये मेरी गोद अब नहीं खुलती। अपने बूढ़े बाप के सामने मेरी गर्दन नहीं उठती। मैं अब अपने गाँव की औरतों से आँखें चुराती हूँ। मेरी इज़्ज़त लुट गयी। औरत की इज़्ज़त कितनी क़ीमती चीज़ है, इसे कौन नहीं जानता? एक औरत की इज़्ज़त के पीछे लंका का शानदार राज्य मिट गया। एक ही औरत की इज़्ज़त के लिये कौरववंश का नाश हो गया। औरतों की इज़्ज़त के लिए हमेशा ख़ून की नदियाँ बही हैं और राज्य लुट गये हैं। मेरी इज़्ज़त आपके आदमियों ने ली है। इसका जवाबदेह कौन है? इंसाफ़ किसका ख़ून चाहता है? इसका फ़ैसला आप करें।

वृन्दा का चेहरा सुर्ख़ हो गया। महाराजा रणजीतसिंह एक देहक़ान औरत का यह हौसला, यह ख़्याल और यह जोशे-तक़रीर देखकर सकते में आ गये। काँच का टुकड़ा टूटकर तेज़

धारवाला छुरा हो जाता है। वही कैफ़ियत इंसान के टूटे हुए दिल की है।

आख़िर महाराज ने एक ठंडी साँस ली और हसरतनाक लहज़े मे बोले—श्यामा, इन्साफ़ जिसका ख़ून चाहता है, वह मैं हूँ!

इतना कहने के साथ महाराजा रणजीतसिंह का चेहरा भभक उठा और उन पर एक जज़्बे का आलम तारी हो गया। महाराजा रणजीतसिंह बेताब होकर उठ खड़े हुए और बुलन्द आवाज़ से बोले—श्यामा, इन्साफ़ जिसका ख़ून चाहता है, वह मैं हूँ! तुम्हारे साथ जो ज़ुल्म हुआ है, उसका जवाबदेह मैं हूँ। बुज़ुर्गों ने कहा है कि ईश्वर के नज़दीक राजा अपने मुलाज़िमों की सख़्ती और ज़बर्दस्ती का ज़िम्मेवार होता है।

यह कहकर राजा ने तेज़ी के साथ अचकन के बन्द खोल दिये और वृन्दा के सामने घुटनों के बल सीना फैलाकर बैठते हुए बोले—श्यामा, तुम्हारे पहलू में तलवार छिपी हुई है। वह विक्रमादित्य की तलवार है। उसने कितनी ही बार इन्साफ़ की हिमायत की है। आज एक बदक़िस्मत राजा के ख़ून से उसकी प्यास बुझा दो। बेशक वह राजा बदनसीब है, जिसके राज्य में बेकसों पर ज़ुल्म होता है।

वृन्दा के दिल में अब एक ज़बर्दस्त तब्दीली पैदा हुई। जोशे-इन्तक़ाम ने मुहब्बत और इहतराम को जगह दी। रणजीतसिंह ने अपनी ज़िम्मेवारी तसलीम कर ली। वे उसके सामने एक मुजरिम की हैसियत में तेग़े-इंसाफ़ का निशाना बनने के लिये खड़े

हैं। उनकी जान अब उसकी मुट्ठी में है। उन्हें मारना या जिलाना अब उसका अख़्तियार है।

वृन्दा ने दिल पर जब्र करके पहलू से ख़ंजर निकाला; मगर वार न कर सकी। तलवार उसके हाथ से छूटकर गिर पड़ी।

महाराजा रणजीतसिंह समझ गये कि औरत की हिम्मत दग़ा दे गयी। वे बड़ी तेज़ी से लपके और तेग़े को हाथ में उठा लिया। एकाएक दाहना हाथ ऊपर को उठा। वह एक बार ज़ोर से बोले—"वाह गुरु की जय!" और क़रीब था कि सीना तलवार के हम आग़ोश हो, बिजली कौंदकर सीने-अब्र में घुसने ही वाली थी कि वृन्दा एक चीख़ मारकर उठी और राजा के ऊपर उठे हुये हाथ को उसने अपने दोनों हाथों से मज़बूत पकड़ लिया। रणजीतसिंह ने झटका देकर हाथ छुड़ाना चाहा; मगर कमज़ोर औरत ने उनके हाथ को इस तरह जकड़ा था जैसे मुहब्बत दिल को जकड़ लेती है। बेबस होकर बोले—श्यामा, इन्साफ़ को अपनी प्यास बुझाने दो।

श्यामा ने कहा—महाराज! इसकी प्यास बुझ गयी। यह तलवार उसकी गवाह है।

महाराज ने तेग़े को देखा। उस वक़्त उसमें दूज के चाँद की चमक थी। हक़ और इंसाफ़ के चमकते हुये सूरज ने उस चाँद को मुनौवर कर दिया था।

—प्रेमचन्द

# हिन्दू-मुसलिम-इत्तिहाद

भाइयो, आज आपके सामने हिन्दू-मुसलिम-इत्तिहाद का सवाल पेश है। मैं यक़ीन करता हूँ कि हर शख़्स इस बात को महसूस करता होगा कि यह मसला हिन्दुस्तान की तवारीख़ में सबसे ज़्यादा अहम है। जहाँ तक हमारे कामों के लिये ज़रूरी है और जहाँ तक आपस के झगड़ों का तअल्लुक़ है, वहाँ तक यह मसला हमें ले जाता है।

आज तक हिन्दू-मुसलिम-इत्तिहाद के लिये बहुत-सी कोशिशें की गयीं; पर अब तक कोई नतीजा नहीं निकला—बार-बार कोशिशें करने पर भी कोई फ़ायदा नहीं हुआ। इस मसले पर आल इंडिया कांग्रेस कमेटी में जो क़रारदादें मंजूर हुई हैं, वे आपके सामने पेश हैं। मैं तहेदिल से उनकी ताईद करता हूँ। ये क़रारदादें हमारे उसूल मक़ासिद के लिये बेहतरीन राहें बतलाती हैं और अगर उनको तमाम ख़ैरख़्वाहान आइन्दा साल अमलदरामद करेंगे, तो हम अपने मक़सद को हासिल कर लेंगे। इनकी तामील से बाहमी तनाज़े दूर होंगे और हम अपने मंज़िले मक़सूद के क़रीब पहुँच जायेंगे। मैं आठ साल से हिन्दू-मुसलिम इत्तिहाद के लिये कोशिश कर रहा था, कुछ हासिल नहीं हुआ; पर अब ख़ुदा का फ़ज़ल है और यक़ीन होता है कि आगे हमें इस काम में पूरी कामयाबी हासिल होगी। १९१६ ई०

में कांग्रेस और मुसलिम लीग ने एक समझौता किया, उसके मुताबिक़ मुसलमानों को अपना मेंबर अलग इन्तख़ाब करने का अख़्तियार दिया गया। अब तक इसी पर अमलदरामद हो रहा है और हालत अफ़सोसनाक है।

अब आज इस बात में सबसे बड़ी कामयाबी यह हुई है कि जहाँ तक मुसलमानों का तअल्लुक़ है, वहाँ तक सेपरेट इलक्ट्रेट के बजाय ज्वाइंट एलेक्टेट रक्खा गया है। यह हमें मुल्क की कामयाबी की तरफ़ बढ़ाती है। लोगों को यह चीज़ नयी मालूम होगी; लेकिन मेरा यक़ीन है, कि मुल्क की भलाई के वास्ते सिवा इसके बर-वक़्त कोई दूसरा तरीक़ा नहीं।

दूसरी बात इस मसले में नये सूबे बनाने की निस्बत कही गयी है। मैं इस बात को पूरी सफ़ाई के साथ कहता हूँ कि जहाँ तक सिंध और बम्बई का तअल्लुक़ है, यह कांग्रेस एलान कर चुकी है कि सूबों की बुनियाद ज़बान पर होनी चाहिये। अगर सरकारी तक़सीम में सिंध बम्बई मे शामिल किया गया था तो यह ग़लती थी। यही बात सरहदी सूबों के मुतअल्लिक़ भी है।

गाय और बाजा के मुतअल्लिक़ आजकल हिन्दुस्तान में फ़िसादात हो रहे हैं। मुल्क के मुख़्तलिफ़ सूबों मे इसी बिना पर हर दो क़ौमों में नफ़रत पैदा हो गयी है। अगर हम इन दोनों मसलों को तय कर लेंगे तो बहुत जल्द दोनों कौमों में इत्तिफ़ाक़ हो जायगा। इसके मुतअल्लिक इस मसले पर जो बातें कही गयी हैं, उनके सिवा दूसरा कोई तरीक़ा इस मामले को हल करने का

फ़िलहाल नज़र नहीं आता। इस मसले पर जो कुछ कहा गया है, वह इस मामले का आखिरी फ़ैसला नहीं है। अभी इस मामले का फ़ैसला करने के लिये हालात माफ़िक़ नहीं हैं। जब कभी हालात माफ़िक़ होंगे तब बिला लाठी के, किसी कानूनी कार्रवाई के, बिला डर और ख़ौफ़ के, यह मामला हल हो जायगा और हरएक क़ौम ख़ुशी से दूसरे के हक़ का एलान कर देगी। जभी इस मामले का आख़िरी हल होगा। अभी इसके लिये आब व हवा ठीक नहीं। इस मौजूदा आब व हवा में यह मसला हल हो नहीं सकता, और इस मसले का स्पिरिट भी यही है।

हिन्दुओं और मुसलमानों में आदत डाली जाय कि एक दूसरे के मज़हबी जज़्बात में दख़ल न दें। जहाँ तक इनका तअल्लुक़ है, इस मामले से दूर रहें। गाय के मामले में हिन्दू अपनी ज़िद तर्क कर दें और जहाँ तक चाहें अपना जलूस ले जायँ। इसी तरह मुसलमानों को भी आज़ादी है कि जहाँ चाहें गोकशी करें; लेकिन बावजूद इस हक़ के दोनों को चाहिये कि वे एक दूसरे के ज़ज़्बात का ख़याल रक्खें।

हमारे एक दोस्त ने कहा है कि इस मसले के साथ-साथ उन मसजिदों की जिनके आगे बाजा नहीं बजाना चाहिये, और जिन-जिन मुक़ामात में गोकशी करनी चाहिये, उनकी एक तफ़सील शाया करा दी जाय; लेकिन फ़िलहक़ीक़त तमाम मुल्क में एक रिवाज नहीं है। इस वक़्त जहाँ कहीं बाजा रोकने का रिवाज़ था, वहाँ वह रिवाज उड़ गया और जहाँ गोकशी नहीं होती थी, वहाँ

होने लगी। इस ख़याल से कोई तफ़सील पेश करना मुश्किल है। इससे यह नतीजा निकलेगा कि काम करनेवालों का रास्ता बन्द हो जायगा और किसी ख़ास हालत में कुछ न कर सकेंगे। फिर भी अगर कोई तफ़सील तैयार भी की जाय तो इतनी बड़ी हो जायगी कि जिसकी एक किताब बन जायगी। मेरा ख़्याल यह है कि इस बात को बिलकुल बँधा छोड़ दिया जाय। मैं यह कहता हूँ कि मुसलमानों को इन बातों से भी ज़्यादा रियायत करनी पड़ेगी। अगर सन् १९२९ ई० से हिन्दू-मुसलिम आपस के झगड़ों को और मुल्क की बदक़िस्मती को मिटाने को तैयार हों, तब तो किसी भी तफ़सील की ज़रूरत नहीं और अगर वे तैयार नहीं तो आप तफ़सीलों की किताब बनाकर भी कुछ नहीं कर सकेंगे। इस मसले पर ख़ूब ग़ौर किया जा चुका है। पंडित मदनमोहन मालवीय और महात्मा गान्धीजी की भी यही राय है। आप अपनी क़ायम करें। हिन्दू और मुसलमान १९२७ ई० के ख़ात्मा पर १९१८ ई० के लिये तैयार हो जायँ। मैं अपील करता हूँ कि आप इस पर अमल करें और इस तजवीज़ पर ग़ौर कर हिन्दू-मुसलिम फ़िसादात का ख़ात्मा करें।

—एक तक़रीर से

---

# 'चुने हुए मज़मून' के मुश्किल लफ़्ज़ों के माने

१. ख़ुशनुमा - सुन्दर
बुलन्द - ऊँचा
दिलकश - मनोहर
२. रसाई - पहुँच
नूरानी - चमकीला, सुन्दर
आड़े वक़्त - संकट के समय
दूर दराज़ - बहुत दूर
बरकत - कृपा, प्रसाद
फ़य्याज़ी - उदारता
बदी - बुराई
ज़िल्लत - अपमान
आला - श्रेष्ठ
सिजदा करना - प्रणाम करना
शादाब - हरा-भरा
३. आसूदगी - सुख और शांति
वीरान - उजड़ा हुआ
ख़ुश-अलहान-अच्छा गाने की आवाज़
राहत - आराम
ख़िज़ाँ - पतन के दिन, बुरे दिन
सुरूर - आनंद
४. शोहरत - प्रसिद्धि
ग़मज़दा - दुखी
५. रेवड़ - झुण्ड
मायूस - निस्सहाय, helpless.
फ़ाका - उपवास
ज़ार-ज़ार - बहुत अधिक दुखी
तहख़ाना - वह घर जो ज़मीन के नीचे बना हो
ज़र्द - पीला
बे-यार - बिना दोस्त के
सदमा - दुख
रंजीदा - दुखित
दरपेश - सामने
सफ़ा - पंक्ति
६. जुर्रत - साहस
संगीन - लोहे का एक नुकीला अस्त्र जो बन्दूक़ के सिरे पर लगाया जाता है
आतिशी - आग उगलनेवाला
फ़तहमंदी - विजय
नग़म - गाना
यगान - अपना
बेगान - पराया
वहशी - जंगली
आशना - यार, मित्र
अक़ारिब - रिश्तेदार
७. बेकरार - व्याकुल
मंज़िले-मकसूद - लक्ष्य
८. क़बीला - गिरोह

तख़्तनशीनी - तख़्त पर बैठना
बहरहाल - जो हो
तारीख़ी - ऐतिहासिक
९. जानिब - तरफ़
पायेतख़्त - राजधानी
बुर्ज़ - गुम्बद
मजलिस - समिति
अजनास - चीज़ें, (जिन्स)
महसूल - कर
सय्याह - यात्री
१०. दियानतदार - ईमानदार
बरामद होना - प्राप्त होना
अमलदारी - सल्तनत, राज्य
हिदायत - मार्ग-दर्शन
११. तोबा - किसी अनुचित कार्य को भविष्य में न करने की दृढ़ प्रतिज्ञा
मायल होना - झुकना
खानक़ाह - मठ
वालिदैन - माता-पिता
मुर्शिद - गुरु
१२. बेआज़ारी - अहिंसा
क़रार देना - ठहराना
अख़लाक़ - सभ्यता, सदाचार
ज़ाती - निजी
मानिंद - समान, तुल्य
नेक अमल - अच्छा काम
१३. शराफ़त - सज्जनता (बड़प्पन)
क़ौल - वाक्य
इहतराम करना - आदर करना, सम्मान करना
दानिशमन्दी - बुद्धिमत्ता
फ़ेल - काम
बेदार - जागृत
मग़ज़ी - दिमागी, बुद्धिमत्ता
मातम करना - मृतक के प्रति शोक प्रकट करना
जाहतलब - महत्वाकांक्षी
१४. सिला - बदला
ज़लील - नीच
बदनफ़स - दुरात्मा
अज़मत - बड़प्पन, महत्ता
मुबालगा के साथ - बहुत बढ़ा-चढ़ाकर
इन्तकाम - बदला
ओहदा - पदवी
मौकूफ़ - निर्भर
अज़ीज़तरीन - बहुत प्यारा
१५. जिस्मानी - शारीरिक
ज़ात - शरीर
१६. मेम्बर - Platform.
निजात - छुटकारा
हश्र - क़यामत का दिन, जब कि सब मुर्दों के शुभ तथा अशुभ कामों का हिसाब होगा।
शोहरत पसंद - कीर्ति चाहनेवाला

१७. मुंसिफ़ - इन्साफ़ करनेवाला
फ़िदिये - Ransom, वह धन जो किसी क़ैदी को छुड़ाने के लिये दिया जाता है।
तरदीद - खंडन
दरिन्दा - खूँख़्वार जानवर
ताबूत - काफ़िन, वह संदूक़ जिसमें लाश रखी जाती है।
१८. आमादा करना - तैयार करना
१९. ख़रीता-लिफ़ाफ़ा, envelope.
जम्हूर - आम लोग, public.
ज़ख़्म - घाव
मुक़द्दस - पवित्र, पाक
विरासत - मीरास, उत्तराधिकार से मिला धन
२०. ग़द्दार - विद्रोही
गिर्द - आसपास
हल्का - घेरा
२१. पिल पड़ना - टूट पड़ना
चाक करना - काटना
हासिद - ईर्ष्यालु
शिगाफ़ - घाव, सूराख़
महबूब - प्यारा
२२. नाशुक्री - कृतघ्नता
पास्त करना - हराना, छेद करना
कवी - दृढ़
पाश-पाश होना - टुकड़े-टुकड़े होना
अबा - एक प्रकार का बड़ा चोगा
क़यामत - आफ़त
दौर-दौरा होना - बहुतायत होना
ग़ालिब होना - विजय पाना
अन्दूहनाक - रंज पैदा करनेवाला
२३. रंजिश - द्वेष, शत्रुता
साफ़गो - साफ़-साफ़ कहनेवाला
शेख़ी - चमक
अलबत्ता - बेशक
२४. शाहाना - बादशाही
२५. सैरगाह - सैर करने की जगह
जानिब - दिशा
तफ़रीह - ख़ुशी
वक़्फ़ - दान में दी हुई सम्पत्ति
[illegible]क - जलती हुई लकड़ी
तह करना - बिलकुल उलट-पलट कर देना
बेदार होना - जागृत होना
२६. अय्याम-दिन (याम का बहुवचन)
मुफ़ीद - फ़ायदेमन्द, लाभदायक
आईन - क़ायदा, नियम
क़वानीन - कानून का बहुवचन
कसरत - अधिकता
रिफ़ाह - परोपकार
नज़ीर - उदाहरण
अमन व आमान - शांति, आराम, चैन
सहूलियत - सुविधा

अहदे-हुकूमत - शासनकाल में
मुलाज़िमत - नौकरी
जा-नशीन - उत्तराधिकारी
२७. ज़ौक़ - ख़ुशी
इसरार - ज़िद, हट
बदगुमान - असन्तुष्ट
बाबरी अमीर - एक मुगल अमीर
२८. बला का - अत्यंत घोर
क़यापा शनास - सूरत देखकर मन की बात समझनेवाला
तेवर - ढंग
आफ़त का परकाला - भयंकर मनुष्य
तर्जे-कलाम - बोलने का ढंग
अतराफ़ - तरफ़ का बहुवचन
क़ब्ज़ होना - अधिकारी बन जाना
उमारा - अमीर लोग
२९. रूह - आत्मा
ख़ुश आमदीद - स्वागत
ख़ूरेज़ - ख़ून बहानेवाला
मार्के - लड़ाई
महज़ - केवल
लक़ब - उपाधि
क़लील - थोड़ा
नादिर - बहुत बढ़िया
क़ौल - कहना, बात
अदल - न्याय
सितम-रसीदा - अत्याचार पीड़ित
मुतवज्जह होना - ध्यान देना
३०. राहज़नी - डाका
एख़्तलाफ़ - विरोध, भिन्न
माविज़ा - बदले में दी हुई चीज़ या धन, बदला
आमिला - अधिकारी
अहद - शासन, राज्य
दीगर - दूसरा
तक़सीम करना - बाँटना
क़ानूनगो - पटवारियों के काग़ज़ों की जाँच करनेवाला
सफ़आरा - फ़ौज़ी अफ़सर
बेदाद - अन्याय
पामाल - बरबाद
इताअत करना - सेवा करना, गुलामी करना
पस - इसलिए
३२. क़हत - अकाल
गिरानी - महँगी
दस्तन्दाज़ी करना - हस्तक्षेप करना, दखल देना
ज़ाब्ता - व्यवस्था, क़ानून
३३. लंगरख़ाना - भोजनालय
लज़ीज़ - स्वादिष्ट
वज़ीफ़ - वह वृत्ति या आर्थिक सहायता जो विद्वानों, छात्रों या त्यागियों को दी जाती है।

इमाम - मुसलमानों में धर्मशास्त्र का ज्ञाता
मुवज्ज़िन - अज़ाँ देनेवाला
सबील - इन्तज़ाम
दस्तरख़ान - वह चादर जिसके ऊपर खाना रखा जाता है
३४. मुहासिरा - क़िले को चारों ओर से घेरना
मोर्चा - वह गड्ढा जो क़िले की रक्षा के लिए चारों ओर खोदा जाता है
तपिश - गर्मी
रूह - आत्मा
३५. क़बल - पहले
फ़रायज़ - फ़र्ज़ का बहुवचन, कर्तव्य
इज़ाफ़ा - बढ़ती
अलामत - निशानी
कतरब्योंत - काट-छांट
मुसर्रत - ख़ुशी
फ़र्श-फ़रूश - बिछौना
आरास्ता करना - सजाना
३६. ख़वास - दासी
वसीला - बहाना, ज़रिया
मरहूम - स्वर्गीय, मृतक
जशन - उत्सव, जलसा
तोहफ़ा - उपहार (Present)
ज़रिया - कारण
३७. अहबाब - मित्र, यार
मारूफ़ - नामी, मशहूर
इन्तख़ाब करना - चुनना
नौनिहाल - नया बच्चा
हालतेज़ार - परेशानी की हालत
फ़ैज - लाभ
कुल्फ़त - तकलीफ़
बेइन्तहा - बेहद, असीम
३८. एतक़ाद - विश्वास
हस्ती - अस्तित्व
जागज़ीं - बैठ जाना, घर कर लेना,
कमसिन - कम उम्र, छोटा
अज़मत - बड़प्पन, श्रेष्ठता
इसरार - हठ, आग्रह
३९. एक-क़लम - बिलकुल
तक़रीब - कोई ऐसा शुभ अवसर जिस पर बहुत से लोग एकत्र हों।
४०. महो होना - तल्लीन होना
४१. आज़ुर्दा - नाख़ुश
मुदर्रिस - उस्ताद, अध्यापक
बार - ज़िम्मा
ताज़ीम - इज़्ज़त
ब-सरोचश्म - सर आँखों पर
अहकाम - हुक्म का बहुवचन
इब्तदाई - प्रारंभिक
४२. इम्दाद - मदद का बहुवचन, सहायता
क़दीम - पुराना

इबारत - लेख
क़लम-बन्द करना - लिखना
रिफ़ाह - उपकार
बाहमी - आपस का
ग़ोल - समूह
ग़मज़द - दुखी
जाँलब - मरणासन्न, जिसकी जाँ लब तक आ गयी हो
४३. मुक़द्दस - पवित्र
फर्ते मुसर्रत - अत्यन्त आनंद
खुर्रम व शाद - खुशी-खुशी
४४. किनाराकशी करना-अलग करना
अज़ाब - पाप
गुफ़्तार - बोलने का ढंग
४५. बेलाग - साफ, किसी की रियायत न करनेवाला
बला - आफ़त
हैवान - जानवर, पशु
शामत - आफ़त
माशा - थोड़ा
४६. नातक़ा बन्द करना - बोलने की हिम्मत न रहने देना।
नमूदार होना - सामने आना
४७. नाज़िल होना - आ पड़ना
करम फ़रमाना - दया करना
४८. ज़हूरा - प्रकाश, प्रताप
जिरह करना - पूछना, सवाल करना
४९. क़ीमा - कटा हुआ गोश्त
५१. हलक़ - गला
५२. शोशा - अनोखी बात
५३. मिज़ाजपुरसी करना - यह पूछना कि आपका मिज़ाज़ कैसा है
तकल्लुफ़ - आदर
५४. हौज़-तालाब, a small tank.
५५. आब-दाना - अन्न-जल
इन्तक़ाल - मरण
लरज़ जाना - काँप उठना
५६. हुलिया - चेहरे की बनावट, रूपरेखा
चुन्हरा-चुन्हरा कर पूछना - जानबूझ-कर अनजान की तरह पूछना
५७. लिहाफ़ - जाड़े में रात को ओढ़ने का एक रूईदार ओढ़नी
५८. हाज़िरीन - उपस्थित लोग
अल्लामा - बड़ा विद्वान
तारीफ़ कराना - परिचय कराना
५९. तालिब-इल्म - विद्यार्थी
खिसियाना - क्रोध में आना
मेदा - पेट
सक़ील - भारी, जल्दी न पचनेवाला
शगूफ़ा - कोई नई और विलक्षण घटना
६०. मुफ़ीद - फ़ायदेमन्द
गफ़ - घना, गाढ़ा
६१. तहक़ीकात - पूछताछ, तलाश

रिज़्क - खाना, रोज़ी
६२. अंग लगना - मोटा ताज़ा होना
मुलाहज़ा फ़रमाना - देखना, निरीक्षण करना
दहाड़ना - चिल्लाना
६५. ख़िज़ाब-बाल रंगने का रोग़न, रंग
क़ायल - माननेवाला
६६. लिहाज़ा - इसलिए
६७. डंडे से रसीद करना - मारना
ख़्वाहमख़्वाह - यों ही
६८. तलब - चाह, पाने की इच्छा
६९. शग़ल - मनोविनोद
मुज़िर - नुकसान पहुँचानेवाला, हानिकारक
तुक्का-फ़ज़ीहती - तू तू मैं मैं करना
रब्त-ज़ब्त - सम्बन्ध
७०. पेंगें बढ़ाना - मिलना जुलना
नासाज़ - अस्वस्थ
७१. अलील - बीमार
७२. दीदा - आँख
७३. हश्र बरपा होना - आफ़त आना
मीज़ान-अदालत - वह तराज़ू जिसमें क़यामत के दिन आदमी के किये बुरे और अच्छे काम तोले जायेंगे।
हराम करना - बरबाद करना
अज़ाब - पाप, मुसीबत
७४. मौज़ा - गाँव
क़रिश्मा - करामात, विचित्र बात
शोला - आग की लपट
शमा - मोम-बत्ती, चिराग़
दराज़ - छेद
तसकीन - आराम, तसल्ली
७५. जोख़ों - ख़तरा, आफ़त
लुकमा - कौर
७६. रुख़सार - गाल
७७. गुलज़ार-आनन्द और शोभायुक्त
क़स्द - इरादा
बालिश्त - क़रीब एक फुट
७८. आफ़ताब - सूर्य
ज़िन्दा-जावेद - अमर
ज़ीनत - शोभा
जलवा-अफ़रोज़ होना - विराजमान होना।
दरख़्शाँ - चमकीला
७९. ग़िलाफ़ - म्यान
वस्फ़ - गुण, ख़ूबी
सख़ावत - दानशीलता
शुजाअत - बहादुरी
मग़रूर - घमंडी, अभिमानी
पुरफ़ज़ा - शोभायुक्त
दिलावेज़ - मनोहर, सुन्दर
आरास्ता - सुसज्जित
नसब करना - खड़ा करना, स्थापित करना

फ़िरोदगाह - ठहरने की जगह
सदहा - सैकड़ों, बहुत
८०. अहले महफ़िल - महफ़िल के लोग
नग़मा - मधुर स्वर
हजूम - भीड़
ख़ुशफेलियाँ - आनंदोत्सव
मुसर्रत - ख़ुशी
फ़तील-सोज़ - चिराग़दान, दीवट
अहम - मुख्य
मुतफ़िक्र - चिन्तित
कामिल - पूरा
८१. फ़र्ते मुसर्रत - ख़ुशी की अधिकता
लब-व-लहज़ा - बोलने का ढंग
कशिश - आकर्षण
८२. फ़ख्रिया अन्दाज़ से - अभिमान से
८३. फ़र्ते शौक़ - शौक़ की अधिकता
हंगामा - हो हल्ला, भीड़
८४. आज़मूदागर - चुने हुए, अनुभवी
खरमस्ती - पाजीपन, शरारत
रंगीनमिज़ाज - शौक़ीन
मुद्दआ - हौसला, अभिलाषा
फ़ने-नग़मा - गाने की कला
लबरेज़ - लबालब, भरा हुआ
तफ़रीहन् - ख़ुशी के लिए, दिलगी के लिए
आबे-हयात - अमृत
लज़्जत - स्वाद
८५. ख़ैरबाद कहना - बिदा लेना
मायल - झुका हुआ
अय्याम-रफ़्ता - गुज़रे हुए दिन
दाद देना - प्रशंसा करना
जन्नतनसीब - स्वर्गवासी
ख़्याल-अफ़ज़ा - विचार को बढ़ानेवाला
८७. ग़नीम - शत्रु
हैवानियत - अमानुषता
आसूदा - सुखी, निश्चिन्त
दरिंदा - हिंस्र पशु
गोशा - कोना
सहम जाना - डर जाना
नफ़सानियत - स्वार्थपरता, घमंड
८८. आबरूरेज़ - इज़्ज़त मिटानेवाला
जिगरदोज़ - दिल को चुभानेवाला
पाकीज़ह - पवित्र, साफ़
दिलकश - मनोहर
आलमे-ख़्याल - The realm of thought, ख़्याल की दुनियाँ
इल्तजा - प्रार्थना
दिलसोज़ - मन में करुणा उत्पन्न करनेवाला
सदा - आवाज़
फील - हाथी
नग़मा लतीफ़ - बढ़िया गाना
बे-हिस व हरकत - ख़ामोश

८९. मेख - कील, खूंटी
मसरूफ़ - तल्लीन
मुज़ाहिम होना - रुकावट होना
शौक़े-परवाज़ - उड़ने का शौक़
सैयाद - शिकारी
हसरतनाक - इच्छापूर्ण
परे-परवाज़ - उड़ने के पर
काश - ईश्वर करे, अच्छा हो
९०. आरज़ूमन्द - इच्छुक
मुमताज़ - प्रतिष्ठित
खुशक़िता - सुन्दर
सहमंज़िला - तीन मंज़िला
मिहराब - Arch
क़लई - चमक दमक, चूना
दीयारगीरियाँ - दीवार के सहारे जलनेवाली एक रोशनी
ज़ेबा - शोभा
ज़ाँ फ़ज़ा - मन को बढ़ानेवाला
९१. शैदाई - आशिक़, प्रेमी
मरकज़ - Centre, केन्द्र
अहले-कमाल - कमाल करनेवाले लोग
तमीज़ - फ़रक़
अदा - हाव भाव
९२. अवाम - आम लोग, जनसाधारण
बाद अज़ाँ - इसके बाद
तग़य्युर - बहुत बड़ा परिवर्तन
वाक़ा होना - घटित होना
रूहानी मसर्रत - परमानंद
आरज़ू - अभिलाषा
मुहिम - युद्ध, लड़ाई
सर होना - साधित होना
इमकाने ख़्याल - सोचने की शक्ति
ज़ेर नगीन - अधिकार में
हवा-ख़्वाहान - शुभचिंतक
९३. मन्तज़िर - इन्तज़ार करनेवाला
इस्तदुआ - प्रार्थना
बरहम - नाराज़
बिलाख़िर - आख़िरकार
मिज़ाजशिनास - मन को समझनेवाले
वसीअ - विस्तृत
पेमाना - नापने का यंत्र
रक़्सगाह - नाच घर
तवायफ़ - वेश्या
गुज़रगाह - सड़क
फ़र्राश - वह नौकर जिसका काम डेरा गाड़ना, फ़र्श बिछाना आदि होता है
ज़र-निगार - जिस पर सोने का काम किया हो
रऊसा - रईस लोग
९४. शरीर - पाजी, नटखट
बशरा - चेहरा
रुआब - रौनक, कांति
मर्दुमशनास- आदमी को समझनेवाला
चे-नुक़्त सुनाना - बहुत गालियाँ देना

जुल्फ़ - सर के बाल
सुर्मा - काजल
९५. कफ़े-अफ़सोस मलना - पछताकर हाथ मलना
ग़ैर मातबर - बेईमान
बाछें खिलना - निहायत ख़ुश होना
सलवातें - गालियाँ
बेज़रर - बिना चोट के, बिना नुक़सान के
सरौदगाह - गाने बजाने की जगह
क़सर - महल
फ़ज़ा - खुली हुई जगह
मुअल्लिक़ - लटका हुआ
९६. अनवरवेज़ - चमकीला
तरावत - ताज़गी
शोरा - शायर का बहुवचन, कवि
साज़िन्द - बाजा बजानेवाला
तुर्बनाक - असर करनेवाला
जौहरे कमाल - प्रतिभा (कमाल का जौहर)
पुरनाज़ - नखरे से भरा
ख़ुलूस - सरलता और पवित्रता
९७. वर्क़े गुलाब - गुलाब के पत्ते
आराइश - सजावट
नज़्ज़ारहे-फ़ितरत - प्राकृतिक दृश्य
सरूर - आनंद
पुर तकल्लुफ़ - अप्राकृतिक
इताअतगुज़ार - गुलाम
आग़ोशे-नाज़ - बचपन का आमोद-प्रमोद
दिल-फ़रेब - मनोहर, मोहक
अताई - उस्ताद के बिना अपने आप सीखनेवाला
दिल-शिकन - दिल को तोड़नेवाला
यास-अंगेज़ - निराशाजनक
रिक्क़त - रोना, दुख
९८. मुतहैयर - आश्चर्य चकित
क़याफ़ा - सूरत, आकृति
अदाफ़रोश - वेश्या
९९. रफ़्ता रफ़्ता - धीरे धीरे
कशिश - आकर्षण
आबगूँ होना - आँसू से भींगना
१०१. झाड़ - एक तरह का लैम्प
१०२. मतानत - दृढ़ता
कीना - शत्रुता
१०३. रूयेदाद - ब्योरा
अम्र - काम
मजाज़ - अधिकारी, मुख़्तार
मह्व - तल्लीन
१०४. पासबाँ - रक्षक, मुहाफ़िज़
देहक़ान - देहाती
सकते में आना - चकित होना
१०५. हसरतनाक - पश्चात्ताप
तारी होना - प्रकट होना

हिमायत करना - समर्थन करना, to support
इहतराम - आदर
१०६. ज़ब्र - बल प्रयोग
हम आग़ोश होना - गले लगाना
सीने अब्र - बादल रूपी छाती
मुनौवर - प्रज्वलित
१०७. क़रारदाद - ठहराव, resolution
हसूल मक़ासिद - उद्देश की प्राप्ति
१०८. अमल- दरामद - प्रयोग
बाहमी तनाजा - काल्पनिक झगड़ा, आपस का झगड़ा
इन्तख़ाब करना - चुनना
बिना - कारण, सबब
१०९. तर्क करना - छोड़ देना
शाया करना - छपाना